महत्वपूर्ण सम्मति

श्री गान्धी ग्रन्थागार के संस्थापक श्री रमाशंकरलाल श्रीवास्तव 'विशारद' महात्मा गान्धी जी के व्यक्त विचारों का संग्रह कर बड़ा ही उपयोगी और प्रशंसनीय काम कर रहे हैं। वर्तमान भारत के महात्माजी युगकर्त्ता कहे जा सकते हैं और उनकी छाप राष्ट्र के सभी अङ्गों पर पड़ी है। श्री रमाशंकरलालजी ने ऐसा प्रबन्ध किया है कि देश के एक-एक समूह के प्रति गान्धीजी के क्या आदेश और उपदेश हैं, उसे पृथक्-पृथक ग्रन्थों में संग्रह किया जाय। हमारे सामने ग्रन्थमाला का प्रथम खण्ड है, जिसमें विद्यार्थियों के प्रति महात्माजी के सन्देशों का संग्रह है। अवश्य ही प्रकाशक ने बड़े परिश्रम से भिन्न-भिन्न स्थानों से खोजकर इन लेखों और वक्तव्यों को एकत्र किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इन सब अमूल्य शब्दों को दोहराकर पढ़ने और मनन करने से हम सबका लाभ होगा। जैसी स्थिति इस समय देश की हो गई है और जैसी गलत-फहमियाँ फैलाई जा रही हैं, उनमें ऐसे ग्रन्थों का विशेष मूल्य और इनके अध्ययन की विशेष आवश्यकता है।

श्री प्रकाश, बी० ए० एल-एल० बी० (कैंटब)
बार-ऐट-लॉ, एम० एल० ए० (सेंट्रल)

विषयसूची

विषय पृष्ठ

महिलाओं से

—:o:—

हिन्दू पत्नी

नीचे एक भाई के लम्बे पत्र का सारांश दे रहा हूँ जिसमें उन्होंने अपनी विवाहिता बहन के दुःख का वर्णन किया है :—

"थोड़े समय पहले मेरी बहन का विवाह एक ऐसे व्यक्ति के साथ हो गया जिसके चारित्र्य से हम अनजान थे। वह व्यक्ति बाद में इतना लम्पट और विषयी साबित हुआ है कि अनन्त व्यभिचार और विषय भोग करते हुए भी उसकी वासना तृप्त नहीं होती। मेरी अभागिनी बहन को विवाह के बाद शीघ्र ही पता चला कि उसके 'स्वामी' दिन दिन निर्बल होते चले जा रहे हैं, उसने उन्हें समझाया। लेकिन वह इसके इस औद्धत्य को सह न सके और उसे 'सबक सिखाने' की गरज से उसके सामने ही व्यभिचार करने लगे। वह उसे बेंतों से मारते, नङ्गी रखते, औंधी टाँगते और भूखों मरने को विवश करते हैं। एक बार अपने 'स्वामी' की व्यभिचार-लीला का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए बहन एक खंभे से बाँध दी गयी जिससे वह भाग न सके। मेरी बहन का

हृदय टूक टूक हो गया। उसकी निराशा की हद नहीं। उसके [illegible] को देखकर हमारा हृदय जल उठता है लेकिन हम लाचार हैं। कृपा कर कहिये हम या हमारी बहन क्या करें? हिन्दू धर्म की शर्ममयी अवस्था का एक चित्र है—उस हिन्दू धर्म में जिसमें स्त्रियों को न अधिकार प्राप्त है, न रियायतें ही। अगर आदमी निर्दय और हृदयहीन है तो बेचारी स्त्री का कोई सहारा इस दुनिया में नहीं। पुरुष अपने जीवन में चाहे जितना व्यभिचार करे, चाहे जितनी शादियाँ करे, कोई उसकी ओर अँगुली उठानेवाला नहीं। लेकिन स्त्री जहाँ एक बार ब्याही गयी उसे सर्वथा अपने स्वामी की दया का पात्र बनकर रहना पड़ता है। एक दो नहीं हजारों बहनें इस अन्याय का शिकार बनकर रात दिन आर्त स्वर से रोती कलपती रहती हैं। जब तक हिन्दू धर्म से ये और ऐसी ही अन्य बुराइयों का नाश नहीं होता, क्या उन्नति की आशा की जा सकती है?"

पत्र लेखक एक सुशिक्षित व्यक्ति हैं। उन्होंने अपने सारे पत्र में अपनी बहन के दुःखों का रोमांचकारी चित्र खींचा है। इस सारांश में वे सब सारी बातें नहीं आ सकतीं। पत्र लेखक ने अपना पूरा नाम और पता भी भेजा है। उन्होंने हिन्दू धर्म की जो निन्दा की है वह असीम दुःख वेदना का परिणाम होने से क्षम्य भले हो किन्तु उनका यह सर्वव्यापी कथन उदाहरण के आधार पर खड़ा किया गया है अतः अतिरंजित है। क्योंकि आज भी लाखों हिन्दू ललनाएँ अपनी गृहस्थी की रानी बनकर पूर्ण सन्तोष और सुख की जिन्दगी बिताती हैं।

अपने पतियों पर इतना प्रभुत्व प्रेम के कारण उन्हें प्राप्त होता है। पत्र लेखक ने निर्दयता का जो उदाहरण पेश किया है, वह हिन्दू धर्म की बुराई का चिन्ह नहीं, बल्कि मनुष्य-स्वभाव में निहित उस बुराई का नमूना है जो किसी एक ही जाति या धर्म के मनुष्यों में नहीं पायी जाती, बल्कि सब जातियों और सब धर्मों के मनुष्यों में मिलती है? क्रूर पति के खिलाफ तलाक दे देने की प्रथा से भी उन स्त्रियों की रक्षा नहीं हुई है जो न तो अपना अधिकार जताना चाहती हैं। अतएव सुधारकों को चाहिए कि वे और नहीं तो सुधारों के खातिर ही अतिरञ्जन करने या अतिशयोक्ति से काम लेने से बाज आयें।

तथापि इस पत्र में जिस घटना का उल्लेख किया गया है वैसी घटना हिन्दू समाज के लिए सर्वथा असाधारण नहीं है। हिन्दू संस्कृति ने स्त्री को गुलाम बनाकर उसे पति के सर्वथा अधीन रखकर बड़ा भारी भूल की है। इसके कारण पति कभी-कभी अपने अधिकार का दुरुपयोग करते हैं और पशुवत् व्यवहार करने पर उतारू हो जाते हैं। इस तरह के अत्याचार का उपाय कानून का आश्रय लेने में नहीं, बल्कि विवाहिता स्त्रियों को सच्चे अर्थ में सुशिक्षित बनाने और पतियों के अमानुषिक अत्याचार के विरुद्ध लोकमत जाग्रत करने में है। प्रस्तुत मामले में जिस उपाय से काम लेना चाहिए, वह अत्यन्त सरल है। इस संकटग्रस्त बहन के दुःख को देखकर रोने या अपनी लाचारी का अनुभव करने के बजाय उसके भाई और दूसरे रिश्तेदारों को चाहिए कि वे उसकी रक्षा करें। उसे समझावें तथा विश्वास दिलावें कि एक

हृदय टूक टूक हो गया। उसकी निराशा की हद नहीं। उसके मुखड़े को देखकर हमारा हृदय जल उठता है लेकिन हम लाचार हैं। कृपा कर कहिये हम या हमारी बहन क्या करें! हिन्दू धर्म की वर्तमान अवस्था का एक चित्र है—उस हिन्दू धर्म में जिसमें स्त्रियों को न अधिकार प्राप्त है, न रियायतें ही। अगर आदमी निर्दय और हृदयहीन है तो बेचारी स्त्री का कोई सहारा इस दुनिया में नहीं। पुरुष अपने जीवन में चाहे जितना व्यभिचार करे, चाहे जितनी शादियाँ करे, कोई उसकी ओर अँगुली उठानेवाला नहीं। लेकिन स्त्री जहाँ एक बार ब्याही गयी उसे सदैव अपने स्वामी की दया का पात्र बनकर रहना पड़ता है। एक दो नहीं हजारों बहनें इस अन्याय का शिकार बनकर रात दिन आर्त स्वर से रोती कलपती रहती हैं। जब तक हिन्दू धर्म से ये और ऐसी ही अन्य बुराइयों का नाश नहीं होता, क्या उन्नति की आशा की जा सकती है?''

पत्र लेखक एक सुशिक्षित व्यक्ति हैं। उन्होंने अपने सारे पत्र में अपने बहन के दुःखों का रोमांचकारी चित्र खींचा है। इस सारांश में वे सब सारी बातें नहीं आ सकतीं। पत्र लेखक ने अपना पूरा नाम और पता भी भेजा है। उन्होंने हिन्दू धर्म की जो निन्दा की है वह असीम दुःख वेदना का परिणाम होने से क्षम्य भले हो किन्तु उनका यह सर्वव्यापी कथन उदाहरण के आधार पर खड़ा किया गया है अतः अतिरञ्जित है। क्योंकि आज भी लाखों हिन्दू ललनाएँ अपनी गृहस्थी की रानी बनकर पूर्ण सन्तोष और सुख की जिन्दगी बिताती हैं।

प्रथा को त्याज्य मान रक्खा है उस समाज की स्त्रियाँ एक बार वैवाहिक जीवन का कटु अनुभव पा लेने पर दुबारा विवाह करना ही नहीं चाहतीं। जब किसी समाज का लोकमत इस तरह की सुविधा प्राप्त करना चाहता है तो मेरे विचार मे यह उसे निःसन्देह मिल भी जाती है। पत्र लेखक के पत्र से जहाँ तक मैं समझ सका हूँ उनकी यह शिकायत तो नहीं है कि पत्नी अपनी विषयेच्छा तृप्त नहीं कर सकतीं। शिकायत तो पति की भयंकर और बेलगाम व्यभिचार की है जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ। मनोवृत्ति को पलट देना ही इसका उपाय है। हमारी अनेक और-और बुराइयो के समान ही बेबसी की भावना भी एक काल्पनिक बुराई है। दूषित कल्पना के कारण शोक और दुःख का साम्राज्य समाज मे फैला हुआ है, वह थोड़े से मौलिक विचार और नये दृष्टिकोण के पाते ही नष्ट भ्रष्ट हो जायगा। ऐसे मामलों में मित्रों और रिश्तेदारों को चाहिए कि वे अत्याचार के शिकार को शिकारी के पंजे से छुड़ाकर ही सन्तोष न कर बैठें बल्कि ऐसी स्त्री को समझाकर उसे सार्वजनिक सेवा के योग्य बनाने का प्रयत्न करें। इन स्त्रियों के लिए इस तरह की शिक्षा पति के शंकास्पद सहवास से कहीं अधिक सुखद और लाभप्रद होगी।

•

एक महिला मित्र के प्रश्न

मेरी एक स्त्री-मित्र ने जिन्हें मेरी बुद्धि और सत्यता पर विश्वास है, मुझसे पेचीदे प्रश्न किये हैं। मैं इन प्रश्नों को इस भय से टाल जाना चाहता था कि उनके उत्तर से ऐसे पति क्रुद्ध होकर विवाद के लिए न उद्यत हो जॉय जो अपने अधिकारों के लिए सशंकित रहा करते है। पर ऐसे सशंकित पति मुझे क्षमा करेंगे, क्योंकि वे जानते हैं कि मुझ में और मेरी स्त्री मे कभी-कभी खटपट होते हुए भी स्वयं विवाहित जीवन के चालीस वर्ष सुख से व्यतीत किये है।

पहला प्रश्न

पहिला प्रश्न उपयुक्त और समयानुकूल है (वास्तविक प्रश्न मराठी भाषा मे है और मैंने उसका स्वतन्त्र रूप से अनुवाद कर दिया है)।

"क्या किसी स्त्री अथवा पुरुष को केवल रामनाम कहने से ही और बिना राष्ट्रसेवा किये ही आत्मज्ञान हो सकता है? मै यह प्रश्न इसलिए करती हूँ कि कुछ बहिनों की धारणा है कि उन्हें घरबार के काम करने और कभी-कभी गरीबों की सहायता करने के अतिरिक्त और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।"

इस प्रश्न ने केवल स्त्रियों को ही नहीं बल्कि बहुत से पुरुषों को भी उलझन मे डाल रक्खा है और मेरे लिए तो भाररूप हो हो गया है। मेरा दर्शन-शास्त्र के उस वाद के अनुयायियों से भी परिचय है जो निष्क्रियता और समस्त प्रयत्नों की निष्फलता की शिक्षा देता है।

मैं इस मत से उस समय तक सहमत नहीं हो सकता जब तक कि मैं स्वयं इसका विश्लेषण न कर सकूँ। मेरे विचार से उन्नति करने के लिए प्रयत्नशील होना आवश्यक है और यह प्रयत्न यह सोचकर ही न किया जाय कि इसका परिणाम लाभदायक ही होगा। 'रामनाम' अथवा इसी प्रकार का कोई नाम आवश्यक है, जपने के लिए नहीं बल्कि आत्मशुद्धि के लिए जिससे आपके प्रयत्न में सहायता मिले और आप यह अनुभव करें कि आप कोई पथ प्रदर्शक हैं, अतः 'राम-नाम' अथवा कोई अन्य नाम 'प्रयत्न' का स्थानापन्न कदापि नहीं हो सकता। यह तो आपको ठीक मार्ग बताने में तथा आपके साहस को बढ़ाने में सहायक हो सकता है। यदि सारा प्रयत्न निष्प्रयोजन ही है तो कुटुम्ब की चिन्ता और कभी-कभी गरीबों की सहायता ही से क्या लाभ ? पर इसी प्रश्न में ही राष्ट्र सेवा के कीटाणु विद्यमान हैं और मेरे विचार से राष्ट्र-सेवा का अर्थ है—मानव सेवा-कौटुम्बिक-सेवा की ओर अधिक ध्यान न देना भी राष्ट्र-सेवा है। निःस्वार्थ कुटुम्ब-सेवा करने से मनुष्य राष्ट्र-सेवा की ओर प्रेरित होता है। 'राम-नाम' मनुष्य को विरक्त तथा दृढ़ बनाता है और कठिन परिस्थितियों में चित्त को डाँवाडोल नहीं होने देता। मेरे विचार में सबसे अधिक गरीब की सेवा तथा अपने और उसके बीच कोई भेद न मानकर मनुष्य को आत्मज्ञान हो सकता है, अन्यथा नहीं।

दूसरा प्रश्न

"हिन्दू धर्म के अनुसार सबसे महान आदर्श यह है कि स्त्री पूर्ण-

रूप से पति भक्त और पति से सम्बद्ध हो चाहे पति प्रेम का
हो अथवा पिशाच ही क्यों न हो। यदि पत्नी के सम्बन्ध में यही
उत्तम माना जाय तो क्या पति की ओर से विरोध किये जाने
पत्नी को राष्ट्र-सेवा कार्य करना चाहिये? अथवा उतना ही
चाहिए जितना करने के लिए पति उसे आज्ञा दे?"

पति के सम्बन्ध में मैं राम को और पत्नी के सम्बन्ध में सीता
अपना आदर्श मानता हूँ। परन्तु सीता राम की दासी नहीं थी अथवा
यू कहिये कि दोनों एक दूसरे के दास तथा दासी थे। राम ने सदैव
सीता के विचारों का आदर किया। यदि प्रेम सच्चा है तो किया गया
प्रश्न उठता ही नहीं और जहाँ सच्चा प्रेम नहीं है वहाँ पति-पत्नी का
कोई बन्धन ही नहीं है। पर आजकल का हिन्दू कुटुम्ब एक पहेली के
समान है। पति तथा पत्नी का जब विवाह होता है, दोनों एक दूसरे
के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते। प्रथा के द्वारा सुरक्षित धार्मिक स्वीकृति
और विवाहित जीवन के भली प्रकार चलने के कारण अधिकांश हिन्दू
घरों में शान्तिमय समय व्यतीत होता है। परन्तु यदि स्त्री अथवा पुरुष
के विचार असाधारण हुए तो आपस में खटपट होने की सम्भावना है।
पति के सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जाता। कर्तव्य
के विचार से वह यह आवश्यक नहीं समझता कि अपनी पत्नी की
इच्छाओं का भी उसे ध्यान रखना चाहिए; वह पत्नी को जिसे अपने
पति के विचारों से ही सन्तुष्ट रहना पड़ता है प्रायः अपनी इच्छाओं
को दबाना पड़ता है। मेरे विचार से यह समस्या हल की जा सकती

हैं। मीराबाई ने हमें इसका ढंग बताया है। पत्नी को अपने विचारों के अनुसार चलने का पूर्ण अधिकार है और मृदुल बनकर तथा निर्भय होकर किसी भी परिणाम के लिए उद्यत रहना चाहिए जब कि उसे विश्वास हो कि उसका निश्चय न्याययुक्त है और वह एक उच्च अभिप्राय के लिए पति के सम्मुख अड़ गयी है।

तीसरा प्रश्न

"यदि पति मांसभक्षी है और पत्नी मांस खाना पाप समझती है तो क्या पत्नी को अपने ही विचारों के आधार पर चलना चाहिए?

क्या उसे प्रेमयुक्त उपायों से पति द्वारा मांसभक्षण अथवा इसी प्रकार के उसके अन्य कार्य छुड़ाना चाहिए? अथवा क्या वह पति के लिए मांस पकाने के लिए बाध्य है या इससे भी पतित कार्य अर्थात् यदि पति उसे मांस खाने के लिए कहे तो क्या वह मांस खाने के लिए बाध्य है? यदि आप यह कहते हैं कि पत्नी को अपने विचारानुकूल चलना चाहिए तो एक सम्मिलित कुटुम्ब इस दशा में कैसे चल सकता है जब कि एक तो दूसरे को विवश करता है और दूसरा विरोध करता है?"

इस प्रश्न का आंशिक उत्तर दूसरे प्रश्नोत्तर में दिया जा चुका है। पत्नी अपने पति द्वारा किये अपराधों में सम्मिलित होने के लिए बाध्य नहीं है। यदि वह किसी कार्य को अनुचित समझती हो तो उसे केवल उचित कार्य ही करना चाहिए। पर इस विचार से कि पत्नी का कार्य घर का प्रबन्ध करना है और भोजन बनाना है और पति का कर्तव्य परिवार के लिए धनोपार्जन है, और पति तथा पत्नी दोनों

यदि पुरुष ने ही मोक्ष पाने पर हठ किया हो तो पत्नी परिवार के लिए मोक्ष पाने के लिए बाधक है। दूसरी ओर यदि किसी मोक्ष-प्रार्थी परिवार में पति सांसारिक ही बना है और पत्नी भी मोक्ष पाने के लिए त्याग करना चाहती है तो वह किसी प्रकार भी इस कार्य के लिए बाधक नहीं है यदि वह ऐसा करना बुरा समझती है। परिवार में शान्ति का वास आवश्यक है। पर इसका अन्त केवल यहीं नहीं है। मेरे विचार में विवाहित जीवन में उतना ही व्यवस्थित होना तथा नियमानुसार चलना चाहिए जितना कि अन्य जीवन में। जीवन कर्तव्य, आचरण परीक्षा है। विवाहित जीवन का लक्ष्य इस जन्म तथा पुनर्जन्म में परस्पर भलाई करना है। मानव-सेवा भी इस जीवन का ध्येय है। विवाहित जीवन में यदि एक नियमों का पालन तोड़ देता है तो दूसरे को यह अधिकार प्राप्त है कि वह न्याययुक्त बन्धन को तोड़ दे। बन्धन तोड़ने का कार्य मानसिक है, शारीरिक नहीं। तलाक का निषेध है। पति अथवा पत्नी केवल उस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए ही अलग होते हैं जिसके लिए उनका बन्धन हुआ था। हिन्दू धर्म के अनुसार दोनों का दर्जा बराबर है। पर इसमें सन्देह नहीं कि चलन कुछ दूसरा ही है और पता नहीं कब से। इसमें बहुतेरे दोष आ गये हैं। मुझे कदाचित् यह भी नहीं मालूम कि हिन्दू धर्मानुसार आत्म-ज्ञान के लिए स्त्री अथवा पुरुष जो चाहे करने के लिए स्वतन्त्र हैं। स्त्री अथवा पुरुष का जन्म केवल आत्मज्ञान के निमित्त ही हुआ है।

स्मृति में स्त्रियों का स्थान

एक सज्जन ने वेदवाड़ा से प्रकाशित होनेवाले इन्डियन म्यगज़ीन का एक अंश मेरे पास भेजा है। इसमें स्मृतियों में स्त्रियों की स्थिति पर एक लेख है। इस लेख में बिना कुछ परिवर्तन किये निम्न उद्धरण दे रहा हूँ :—

पत्नी को चाहिए कि वह पति को सदा ईश्वर के रूप में माने, चाहे वह चरित्रहीन, कामी और पतित ही हो। (मनु, ५—१५४)

स्त्रियों को अपने पतियों के कहने के अनुसार चलना चाहिए। यह उनका सबसे बड़ा कर्तव्य है। (याज्ञवल्क्य १—१८)

स्त्री के लिए कोई अलग यज्ञ अथवा उपवास नहीं है। उसे अपने पति की सेवा से स्वर्गलोक में ऊँचा स्थान मिलता है। (मनु ५—१५५)

जो स्त्री अपने पति के जीवित रहते उपवास और यज्ञ करती है, वह ऐसा करके अपने पति का जीवन कम करती है, वह नरक जाती है, जो स्त्री पवित्र जल की कामना करती है उसे चाहिए कि वह अपने पति के चरण अथवा उसका सारा शरीर जल से धोवे और उस जल को पीवे। ऐसी स्त्री को सबसे ऊँचा स्थान मिलता है। (ऐतरेय १३६—१३७)

जो स्त्री अपने पिता के परिवार पर गर्व करती है और अपने पति की आज्ञा का उल्लंघन करती है, राजा को चाहिए कि उसे बहुत से लोगों के सामने कुत्ते से नुचवाये। (मनु ८—३७१)

जो स्त्री अपने पति की आज्ञा का उल्लंघन करती है उसके हाथ का खाना किसी को नहीं खाना चाहिए। ऐसी स्त्री को इन्द्रियलोलुप मानना चाहिए। (अङ्गिरस, ६६)

यदि पति दुराचारी हो अथवा मद्यप हो अथवा शारीरिक व्याधि से पीड़ित हो और पत्नी उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन करे तो उसे तीन महीने तक अपने बहुमूल्य कपड़ों और गहनों से वंचित रखना चाहिये। (मनु १०—७८)

यह सोचकर दुःख होता है कि स्मृतियों मे ऐसे श्लोक है, जिनपर उन पुरुषों को श्रद्धा नहीं हो सकती जो अपनी ही भाँति स्त्री की स्वाधीनता की कामना करते हैं और उसे समस्त जाति की माता मानते है। दुःख यह सोचकर और बढ़ जाता है कि सनातनियों की ओर से प्रकाशित होनेवाले एक पत्र में ये श्लोक इस प्रकार छपे हैं जैसे वे धर्म के अंग हों। स्वभावतः स्मृतियों में ऐसे श्लोक है जो स्त्री को उसका उचित स्थान प्रदान करते है और उसे बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं। प्रश्न उठता है कि उन स्मृतियों का क्या किया जाय, जिनमें ऐसे श्लोक है जो उसी मे दिये हुए अन्य श्लोकों के विपरीत और नैतिक भावना के विरुद्ध है। मै इन पृष्ठों में अनेक बार लिख चुका हूँ कि धर्मग्रन्थों के नाम पर जो कुछ छपता है उसमें सभी को ईश्वर की

वाणी अथवा देववाणी के रूप में नहीं लेना चाहिए। लेकिन हर कोई यह तय नहीं कर सकता कि कौन-सी बात अच्छी और प्रामाणिक है तथा कौन-सी बात बुरी है। इसलिए एक ऐसी अधिकारी संस्था की आवश्यकता है, जो धर्मग्रंथों के नाम पर जो सब छपा है उसका संशोधन करे, ऐसे श्लोकों को छाँट दे जिनका नैतिक मूल्य नहीं है और जो धर्म और नीति के विरुद्ध हैं तथा ऐसा संस्करण हिन्दुओं के पथ-प्रदर्शन के लिए उपस्थित करे। यह विचार इस पवित्र कार्य के मार्ग में बाधक न होना चाहिए कि सर्वसाधारण हिन्दू और धार्मिक नेता माने जानेवाले व्यक्ति ऐसी संस्था की बात प्रामाणिक नहीं मानेंगे। जो काम सचाई से और सेवाभाव से किया जायगा, वह समय बीतने पर अपना प्रभाव डालेगा और निश्चय ही उन लोगों की सहायता करेगा जो इस प्रकार की सहायता बुरी तरह चाहते हैं।

स्त्री और वर्ण

"वर्ण का तात्पर्य अधिकारों अथवा विशेषाधिकारों का समूह नहीं है, यह केवल कर्तव्य और धर्म को निर्धारित करता है। वह स्त्री जो अपने कर्तव्य को जानती है और उसका पालन करती है, अपने उच्च पद का अनुभव करती है। वह घर की मालिक है, रानी है, दासी नहीं है।"

एक माननीय मित्र लिखते हैं

"वर्ण के सम्बन्ध में अभी हाल में जो कुछ आपने लिखा उससे पता चलता है कि वर्ण के सिद्धान्त पर जो आपने थोड़ा प्रकाश डाला है वह केवल पुरुषों के लिए ही लागू होता है। तो फिर स्त्री के लिए क्या है? किस बात से स्त्री का वर्ण निश्चित किया जायगा? कदाचित् आप यह कहेंगे कि विवाह के पूर्व स्त्री का वही वर्ण होगा जो उसके पिता का होगा और विवाह के पश्चात् उसका वर्ण पति के समान होगा। तो क्या इसका यह तात्पर्य है कि आप मनु की कुप्रसिद्ध कहावत का समर्थन करते हैं कि स्त्री अपने जीवन में किसी भी समय स्वतन्त्र नहीं हो सकती, अर्थात् विवाह के पूर्व वह माता व पिता के रक्षण में, विवाहोपरान्त पति के रक्षण में और विधवा होने पर अपने बच्चों के रक्षण में रहे?"

"जो कुछ भी हो पर यह सत्य है कि यह युग स्त्री की सम्मति लेने का है और निःसन्देह उसने स्वतन्त्र धन्धे की खोज के लिए पुरुष के

लड़की के वर्ण में कोई अन्तर नहीं होता। परन्तु यदि पति का वर्ण भिन्न हो तो विवाहोपरान्त पत्नी का वर्ण पति के समान हो जायगा और उसे पिता का वर्ण छोड़ना होगा। इस प्रकार वर्ण के बदलने से न तो किसी पर कलंक ही और न तो किसी की योग्यता पर ही संदेह होता है, क्योंकि इस नवजीवन के युग में वर्ण के आधार पर चारों वर्ण सामाजिक विचार से बराबर हैं।

मैं इसे नियम के रूप में नहीं मानता कि पत्नी अपने पति से स्वतंत्र होकर अपना कोई धन्धा अपनायेगी। उसके लिए यही काफी है कि वह बच्चों की देखभाल करे और घर संभाले। सुव्यवस्थित समाज में परिवार चलाने का अतिरिक्त भार उनपर नहीं होना चाहिए। पुरुष का धर्म है कि वह गृहस्थी चलाये और स्त्री घर का प्रबन्ध करे और इस प्रकार दोनों एक दूसरे के कार्य में योग तथा सहायता देते रहेंगे।

इस प्रकार स्त्री के अधिकारों का न तो हनन होता है और न उसकी स्वतन्त्रता ही छीनी जाती है। मैं मनु के इस कथन से सहमत नहीं हूँ कि स्त्री 'स्वतंत्र नहीं हो सकती।' इससे यही पता चलता है कि जिस समय उन्होंने यह नियम बनाया था, उस समय स्त्रियाँ पुरुषों के आधीन रक्खी जाती थीं। हमारे साहित्य में पत्नी को अर्द्धांङ्ग और 'सहधर्मिणी' के नाम से सम्बोधित किया गया है। इसलिए पति यदि पत्नी को देवी कहकर सम्बोधन करे तो कोई हँसी की बात नहीं है। परन्तु अभाग्यवश एक समय ऐसा आया जब कि स्त्री के बहुतसे अधिकार छीन लिए गये और उसका पद नीचा कर दिया गया। परन्तु उसका वर्ण ज्यों का त्यों

हा, क्योंकि वर्ण का तात्पर्य अधिकारों अथवा विशेषाधिकारों का समूह नहीं है, यह केवल कर्तव्य और धर्म को निर्धारित करता है। हमें कोई कानून-विहीन नहीं कर सकता जब तक हम स्वयं ऐसा न चाहें। वह स्त्री जो अपने कर्तव्य को जानती है और उसका पालन करती है वही अपने उच्च पद का अनुभव करती है। वह घर की मालिक है, रानी है, दासी नहीं।

अब मुझे इस सम्बन्ध में कदाचित् अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मेरे कथनानुसार यदि समाज में स्त्री का उपर्युक्त कर्तव्य माननीय है तो उसके बच्चों के वर्ण की समस्या का अन्त हो जाता है और उस दशा में पति अथवा पत्नी के वर्ण में कोई भेद नहीं रह जाता।

महिलाओं की स्थिति

एक मित्र जिन्होंने सफलतापूर्वक अभी तक विवाह की इच्छा का विरोध किया है, लिखते हैं:--

"कल मलाबारी हाल बम्बई में महिलाओं की एक समिति की बैठक हुई जिसमें कई सुन्दर व्याख्यान दिये गये और कई प्रस्ताव पास किये गये। शाम के लिए शारदा-बिल का विषय निर्धारित था। हम लोग बहुत प्रसन्न हैं कि आप लड़कियों के लिए १८ साल की अवस्था विवाह के लिए उपयुक्त समझते हैं। दूसरा महत्वपूर्ण विषय, जिस पर वाद-विवाद हुए, उत्तराधिकार के नियम थे। यदि आप 'नव-जीवन' या 'यंग इण्डिया' में इस विषय पर एक जोरदार लेख लिखते तो बड़ी ही सहायता मिलती। स्त्रियों को जन्मजात अधिकारों की प्राप्ति के लिए भीख माँगना या लड़ना क्यों पड़े? यह एक अजीब करुण और हास्यास्पद बात है कि स्त्रियों से ही उत्पन्न पुरुष उनके विषय में ऊँची-ऊँची बातें करें और सज्जनतापूर्वक उनके लिए उचित भाग देने का वादा करें। यह देने की बात कितनी निरर्थक है? किसीसे छीनी गयी वस्तु को वापस देने में कौन-सी वीरता और सज्जनता है? किस विषय में स्त्रियाँ पुरुषों से कम हैं? उनका उत्तराधिकार पुरुषों से कम क्यों हो? दोनों का अधिकार समान क्यों न रहे? दो दिन पहले हम कुछ लोगों के साथ इसी बात पर वाद-विवाद कर रहे थे। एक महिला ने कहा--'हम लोग इस कानून में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहतीं

और पूर्ण सन्तुष्ट हैं। यह बिलकुल उचित है कि लड़का जिसके पीछे पारिवारिक रीतियाँ और नाम चलते हैं उसे अधिक भाग मिलना चाहिए। वह परिवार का स्तम्भ है।' हम लोगों ने पूछा—'और आपका लड़कियों के विषय में क्या विचार है?' बीच ही में एक युवक बोल पड़े—'ओह, दूसरा उनकी देख-भाल करेगा' दूसरा! सदा दूसरा!! यह दूसरा व्यक्ति ही सारे झगड़ों की जड़ है। दूसरे की आवश्यकता ही क्यों हो! ऐसा क्यों मान लिया जाय कि कोई दूसरा रहेगा? लोग ऐसे बातें करते हैं जैसे लड़कियाँ कोई गट्ठर हों, जिनका भार किसी दूसरे पुरुष के मिलने तक उनके पिता का परिवार उठाए और जब वह मिल जाय तो उसे छुटकारे की साँस के साथ सौंप दिया जाय। यदि आप लड़की होते, तो क्या सचमुच आपको इस बात पर क्रोध न आता?''

पुरुष ने स्त्रियों के प्रति जो अत्याचार किये हैं उन पर क्रोध आने के लिए मुझे लड़की होने की आवश्यकता नहीं। मैं 'उत्तराधिकार' को स्त्रियों के लिए बहुत कम मानता हूँ। उत्तराधिकार से कहीं बड़ी बुराई का वर्णन शारदा-बिल में है। लेकिन मैं स्त्रियों के अधिकारों के मामले में कोई सुलह नहीं करना चाहता। कानूनन उन्हें पुरुषों की अपेक्षा किसी प्रकार शक्तिहीन नहीं रखना चाहिए। मैं तो लड़कों और लड़कियों के साथ पूर्ण-समानता का व्यवहार करना चाहता हूँ। जैसे जैसे स्त्रियों को अपनी शक्ति का ज्ञान होता जायगा (जैसा कि उनकी शिक्षा के अनुपात से अवश्य होगा) वे स्वयं, जिस [illegible] जाती हैं, उससे घृणा करने लगेंगी।

किन्तु कानून की असमानता हटाना अपर्याप्त होगा। इस बुराई की जड़ जितना बहुत लोग समझते हैं, उससे कहीं गहरी है। यह मनुष्य के हृदय में शक्ति और समृद्धि के प्रति जो लालच की भावना है, उसमें तथा और नीचे पारस्परिक-धारणा में है। मनुष्य ने सदा से शक्ति चाही है और सम्पत्ति पर उसका अधिकार होने से उसे शक्ति मिलती है। पुरुष अपनी मृत्यु के उपरान्त प्रसिद्धि भी चाहता है जो शक्ति पर निर्भर है। यदि सम्पत्ति उत्तरोत्तर टुकड़ों में बँटती जाय (जैसा पुरुष और स्त्री के साथ समानता का व्यवहार करने पर अवश्य ही होगा) तो ऐसा नहीं हो सकता। इसीलिए सम्पत्ति उत्तराधिकार अधिकांश रूप से सबसे बड़े लड़के को मिलता है। बहुधा स्त्रियाँ विवाहित हैं और कानून के विरुद्ध होने पर भी वे अपने पति की शक्ति और सुविधाओं में भाग लेती हैं। वे अपने पति की पत्नी होने में ही गर्व मानती हैं और यद्यपि वे असमानता के व्यवहार के विरुद्ध जहाँ कहीं वाद-विवाद होता है आवाज उठाती हैं, जब कार्यरूप में परिणत करने का प्रश्न आवेगा तो वे अपनी इन वर्तमान सुविधाओं को छोड़ने के लिए प्रस्तुत न होंगी।

अतः मैं चाहूँगा कि भारतीय शिक्षित महिलाएँ अनुचित कानूनों के विरोध के साथ साथ इस बुराई की जड़ को ही नष्ट करने की चेष्टा करें। स्त्री त्याग और सहनशीलता का अवतार है और सामाजिक जीवन में उसके आगमन का परिणाम सन्तान का परिपालन मकान का परिशोधन और सम्पत्ति संग्रह तथा असंयत आकांक्षाओं का दमन होना चाहिए। उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि लाखों पुरुष ऐसे हैं जिनके पास

आनेवाली पीढ़ी को देने के लिए कोई सम्पत्ति नहीं। उनसे हमें यह सीखना चाहिए कि पैत्रिक सम्पत्ति का न होना और अच्छा है। चरित्र और शिक्षा के लिए जो सुविधाएँ माता-पिता सन्तान को देते हैं, वही ऐसी सम्पत्ति है जो वे अपनी सन्तानों के बीच समान रूप से बाँट सकते हैं। माता-पिता को चाहिए कि वे बालक-बालिकाओं को स्वावलम्बी बनाएँ, जिससे वे अपने पसीने के बल से जीविका-उपार्जन कर सकें। इस प्रकार छोटे बच्चों के पालन-पोषण का भार स्वाभाविक रूप से बड़े बच्चों पर आएगा। अगर धनी लोग अपने बच्चों को खानदानी जायदाद के गुमान बनाने की आकांक्षा की जगह पर ऐसी शिक्षा दें कि वे स्वतन्त्र हो सकें, तो उनके बच्चों के स्वभाव से आडम्बरप्रियता जाती रहेगी। खानदान की जायदाद पर निर्भर रहने से उद्योग की प्रवृत्ति मर जाती है और ऐश्वर्य और आलस्य में पलनेवाली कामनायें बल पाती हैं। आधुनिक महिलाओं का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे युगों पुरानी इस प्रथा का पता लगाकर नष्ट करने का प्रयत्न करें।

पारस्परिक वासना भी स्त्रियों के विकास को रोकनेवाले कारणों में से रही है, इस विषय में उदाहरण की आवश्यकता नहीं। अज्ञात रूप से स्त्री ने पुरुष को कई प्रकार से अप्रत्यक्ष सूक्ष्म तरीकों से घेर रक्खा है और पुरुष ने उसी प्रकार अज्ञात रूप से स्त्री पर अधिकार जमाने की व्यर्थ चेष्टाएँ की हैं और इसके परिणामस्वरूप दोनों के विकास में बाधा पड़ी है। इस प्रकार यह एक ऐसा महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसके सुलझाने के लिए भारतमाता की शिक्षित पुत्रियों की आवश्यकता है।

उन्हें पाश्चात्य ढङ्ग के अनुकरण की आवश्यकता नहीं, यह वहीं के लिए उचित है। उन्हें भारतीय वातावरण और भारतीय मेधावियों के अनुरूप ढंग का उपयोग करना चाहिए। इनके हाथ बली, नियन्त्रणशील, शोधनकारी और दृढ़ होने चाहिए जिससे वे हमारी संस्कृति की अच्छी बातों को सुरक्षित रख सकें और निकृष्ट तथा अधोशील को बिना संकोच अलग कर सकें। यह सीता, द्रौपदी, सावित्री और दमयन्ती जैसी स्त्रियों का कार्य है, न कि पुरुषों की नकल करनेवाली स्त्रियों का।

महिलाओं के प्रति व्यवहार

कटक की श्रीमती सरला देवी लिखती हैं--

“क्या आप ऐसा नहीं मानते कि हमारे यहाँ स्त्रियों के प्रति जो व्यवहार किया जाता है, वह उतना ही भयानक रोग है जितना अस्पृश्यता ! मैं जितने राष्ट्रीयतावादी युवकों के सम्पर्क में आयी हूँ, उनमें ०० प्रतिशत का दृष्टिकोण पाशविक है। भारतीय असहयोगियों में से कितने ऐसे हैं जो स्त्रियों को भोग-विलास का साधन नहीं समझते ? क्या आत्मशुद्धि जो सफलता के लिए अनिवार्य है, बिना स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन किये सम्भव है ?”

मैं यह मानने में असमर्थ हूँ कि स्त्रियों के प्रति जो व्यवहार किया जाता है, अस्पृश्यता के बराबर ही भयानक रोग है। श्रीमती सरला देवी ने इस समस्या के विषय में अधिक बढ़ाकर कहा है। और न तो असहयोगियों के प्रति किया गया दोषारोपण ही माना जा सकता है। अतिशयोक्ति से किसी विषय का महत्त्व कम ही होता है। साथ ही मुझे यह स्वीकार करने में कोई अड़चन नहीं कि पूर्ण-स्वराज प्राप्त करने के लिए पुरुषों के हृदय में स्त्रियों के लिए जो आदर पवित्रता की भावना है, उसे कहीं अधिक विकसित और परिष्कृत करना पड़ेगा। माननीय एंड्रूज ने श्रीमती सरला देवी की अपेक्षा कहीं अधिक सत्य बात कही है 'अपनी पतित बहनों की मानहानि पर दृष्टिपात करने का हमारा साहस नहीं होता' कोई भी असहयोगी बड़े जोश के साथ यह कहता हुआ पाया जा सकता है

कि कुमार्ग पर जानेवाली इन बहनों में से बहुतों ने अपने को असह-योग के लिए 'रिजर्व' कर रक्खा था, यह हमारे लिए एक अपमान-जनक बात है।

इस विषय में जो चारित्रिक संगठन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, सहयोगियों और असहयोगियों में कोई भेद नहीं हो सकता। हम पुरुषों को जब तक एक भी स्त्री हमारी वासना के वशीभूत रहे, लज्जा से अपना सिर नीचा किये रखना चाहिए। ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति को अपनी वासना का साधन बनाकर हम पशुओं से भी नीचे उतरें, इसकी अपेक्षा मैं पुरुष-जाति का सर्वनाश देखना चाहूँगा। किन्तु यह केवल भारतवर्ष ही का प्रश्न नहीं, बल्कि सारे संसार का प्रश्न है। और मैं इन्द्रिय सुख से पूर्ण आधुनिक कृत्रिम जीवन का विरोध करता हूँ और लोगों से प्राचीन सात्विक जीवन ग्रहण करने को कहता हूँ (जिसका द्योतक चरखा है) क्योंकि मैं जानता हूँ कि बिना सादगी के हम अपनी इस पाशविक स्थिति से ऊपर नहीं उठ सकते। मैं अपनी महिलाओं के लिए अधिक से अधिक स्वाधीनता चाहता हूँ। बाल-विवाह से मुझे घृणा है और विधवा बालिका को देखकर मैं काँपने लगता हूँ तथा स्त्री के देहान्त के पश्चात् तुरन्त विवाह करनेवाले पुरुष को देखकर मैं क्रोध से पागल हो उठता हूँ। मैं ऐसे माता-पिता को जो अपनी बालि-काओं को बिल्कुल अशिक्षित रखते हैं और किसी धनाढ्य व्यक्ति के साथ विवाह करने के लिए उनका पालन पोषण करते हैं बड़ी नीची दृष्टि से देखता हूँ। किन्तु इस दुःख और क्रोध के साथ-साथ मैं इसकी

कठिनाइयों को भी अनुभव करता हूँ। स्त्रियों को वोट देने का अधिकार और कानूनी समानता अवश्य मिलनी चाहिए, परन्तु यह प्रश्न यहीं नहीं समाप्त होता। केवल यह वहाँ से प्रारम्भ होता है जहाँ स्त्रियाँ राष्ट्र के राजनीतिक निर्माण पर प्रभाव डालने लगती हैं।

मेरा क्या उद्देश्य है, इसके लिए मैं एक सज्जन मुसलमान मित्र के वाद विवाद को उद्धृत करूँगा जो उनके और..... के बीच हुआ था और जिसका वर्णन उन्होंने मुझसे बड़े सुन्दर रूप से किया था। वे स्त्रियों के समर्थकों की एक सभा में बैठे थे और उन्हें ऐसी जगह देखकर एक महिला मित्र को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने उनसे वहाँ उपस्थित होने का कारण पूछा। मुसलमान मित्र ने बताया, "मेरे यहाँ आने के दो मुख्य और दो गौण कारण हैं। मेरे शैशव काल ही में मेरे पिता का देहान्त हो गया, अतः मेरे विकास का पूर्ण श्रेय मेरी माँ को है। फिर मेरा विवाह एक स्त्री से हुआ जो मेरे जीवन की सच्ची सहचरी थी। अब मेरे कोई पुत्र नहीं केवल चार लड़कियाँ हैं जो सभी बहुत छोटी हैं और उनसे मुझे पिता के रूप में बड़ा स्नेह है। क्या यह आश्चर्यजनक बात है कि मैं स्त्रियों का समर्थक हूँ? मुसलमानों पर यह सबसे बड़ा दोषारोपण किया जाता है कि वे स्त्रियों के प्रति उदासीन रहते हैं।

इस्लाम स्त्रियों के लिए समानता का व्यवहार सिखाता है और मेरा विचार है कि पुरुष ने अपनी वासना के लिए स्त्री को पतित किया है और उसकी आत्मा के स्थान में उसने उसके शरीर की उपासना में

यहाँ तक सफलता पायी है कि आज स्त्री को यह भी ज्ञात नहीं कि
जो शारीरिक सौंदर्य की ओर इतनी झुकी रहती है, उसके गुलामी
चिन्ह है।" इतना कहते कहते उनका गला भर आया। "यदि ऐ
नहीं है तो हमारी पतित बहनें शारीरिक सौंदर्य में इतना मन क
लगाती हैं? क्या हमने उनकी आत्मा को कुचल नहीं डाला है?
अपने को सम्भालने के बाद उन्होंने कहा, "नहीं, मैं स्त्रियों के लि
कृत्रिम स्वतन्त्रता ही नहीं चाहता बल्कि उन सभी सम्बन्धों को तो
देना चाहता हूँ जो उन्हें उनकी इच्छा से बाँधे हुए हैं।" इसलिए
सज्जन अपनी लड़कियों को एक स्वतन्त्र पेशे के योग्य बनाना चाहते थे

इस वाद-विवाद का और वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। मेरी
इच्छा है कि मेरे संवाददाता इन मुसलमान मित्र की बात पर ध्यान
पूर्वक विचार करें और फिर प्रश्न को सुलझाने की चेष्टा करें। स्त्रियां
अवश्य ही यह अपने मन से निकाल दें कि वे पुरुषों की वासना के
पात्र हैं। उनकी उन्नति पुरुषों की अपेक्षा उन्हीं के हाथों में है। यदि
उन्हें पुरुषों की समानता प्राप्त करनी है, तो उन्हें अपने पति के लिए
भी शारीरिक सौंदर्य की ओर मन न देना चाहिए। मेरे ध्यान में नहीं
आता कि सीता ने एक भी क्षण शारीरिक सौंदर्य द्वारा राम को प्रसन्न
करने में बिताया होगा।

स्त्रियों का पुनर्जीवन

बम्बई भगिनी-समाज के वार्षिक अधिवेशन में व्याख्यान देते हुए गांधीजी ने कहा:—

यह जानना आवश्यक है कि स्त्रियों के पुनर्जीवन से हमारा क्या तात्पर्य है। इसमें स्त्रियों के जीवन की पहले से ही कल्पना कर ली गयी है और यदि ऐसा है तो हमें देखना चाहिए कि पुनर्जीवन का प्रश्न उठा क्यों और कैसे? इन बातों पर अधिक सोच विचार करना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। समस्त हिन्दुस्तान की यात्रा करने में मैंने अनुभव किया है कि सभी वर्तमान आन्दोलन हमारी जनता के थोड़े से लोगों तक ही सीमित हैं जो कि एक वृहत् प्रकाश-पुंज में एक चिनगारी के समान है।

करोड़ों स्त्री और पुरुष इस प्रचार से अनभिज्ञ हैं और हमारे देश के ८५ प्रतिशत लोग अपना जीवन उनके आस पास जो हो रहा है उनमें बिना हाथ बँटाए बिता रहे हैं। ये स्त्री और पुरुष अनजान होने पर भी अपने जीवन में कुशलता और सफलता पूर्वक भाग लेते हैं। दोनों को या तो एक-सी शिक्षा मिलती है या मिलती ही नहीं। फिर भी वे एक दूसरे की यथोचित सहायता करते हैं। उनके जीवन में जो भी अपूर्णता है उसका कारण शेष १५ प्रतिशत लोगों के जीवन में मिलेगा। यदि भगिनी-समाज की हमारी बहनें इन ८५ प्रतिशत लोगों के जीवन का निकट से अध्ययन करें तो उन्हें एक सुन्दर सामाजिक कार्यक्रम मिलेगा।

अपने निरीक्षण को मैं ऊपर आये हुये १५प्रतिशत लोगों तक ही सीमित रखूँगा, फिर भी स्त्रियों और पुरुषों की उभयनिष्ट कमजोरियों पर विचार-विनिमय करना संगत नहीं। हम जिस विषय को समझने जा रहे हैं वह पुरुषों के अपेक्षाकृत स्त्रियों का पुनर्जीवन है। नियमों के नियन्ता अधिकतर पुरुष रहे हैं और पुरुषों ने इसमें सदा ईमानदारी और न्याय नहीं किया है। स्त्रियों का सुधार करते समय हमें सबसे अधिक ध्यान उन चीजों को हटाने पर देना चाहिए जिन्हें शास्त्रों ने स्त्रियों के जन्मजात कहा है। इसे कौन और किस प्रकार करेगा? मेरी राय में इस कार्य के लिए हमें सीता, दमयन्ती और द्रौपदी की भाँति दृढ़ और आत्मसंयत नारियों का निर्माण करना होगा। इस प्रकार की स्त्रियों को समाज उसी आदर से देखेगा जिससे इनकी पुरातन प्रतिकृति को। उनकी वाणी में वही शक्ति होगी जो शास्त्रों में है। स्मृतियों में उनके विषय में जो ऊटपटाँग बातें कही हैं, उनपर हमें लज्जा आयेगी और हम उन्हें भूल जाँयगे। इस प्रकार के विद्रोह हिन्दू समाज में पहले भी हुए हैं और आगे भी होंगे और इनसे हमारा विश्वास और बढ़ता है। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि हमारा यह संगठन शीघ्र ऐसी स्त्रियाँ पैदा करने में सफल हो।

हम स्त्रियों के पतन के मुख्य कारणों पर विचार कर चुके हैं और उन आदर्शों पर भी हम प्रकाश डाल चुके हैं जिनसे उनकी वर्तमान दशा में सुधार हो सकता है। निश्चय ही इन आदर्शों को समझनेवाली स्त्रियों की संख्या बहुत कम होगी, इसलिए हम साधारण स्त्रियाँ क्या कर सकती हैं (यदि वे करना चाहें) इसपर विचार करेंगे। उनकी

सकता । पढ़ने लिखने से मस्तिष्क की वृद्धि और विकास होता है और हमारे अच्छे कार्यों के करने की चेतना आती है। ऐसा कहकर मैं पढ़ने लिखने की उचित उपयोगिता ही समझ रहा हूँ। स्त्रियों की अशिक्षा के कारण पुरुषों को उनसे अधिक अधिकारों का उपयोग करने में कोई न्याय नहीं। परन्तु इन स्वाभाविक अधिकारों की रक्षा में समर्थ होने के लिए उनमें सुधार करने के लिए शिक्षा की आवश्यकता है, और फिर बिना शिक्षा के करोड़ों लोगों को आत्मज्ञान प्राप्त होना असम्भव है। बहुत-सी पुस्तकें निर्दोष आनन्द देनेवाली हैं, लेकिन बिना शिक्षा के उनका आनन्द हम नहीं प्राप्त कर सकते।

इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि बिना शिक्षा के पुरुष पशुओं से अधिक ऊँचे नहीं रहता। अतः शिक्षा स्त्रियों के लिए उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार पुरुषों के लिए; किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों का एक ही प्रकार की शिक्षा दी जाय। सबसे पहले तो हमारी सरकार की शिक्षा-पद्धति में बहुत-सी कमियाँ हैं और उससे बहुत कुछ हानि होती है, उससे दोनों को बचाना चाहिए। उसकी वर्तमान बुराइयाँ हट जाने पर भी, स्त्रियों के लिए हर दृष्टिकोण से वह उपयोगी और उचित नहीं होगी। स्त्री और पुरुष समान हैं, परन्तु एक दूसरा नहीं हो सकता। उनका एक अनुपम जोड़ा है और उनमें से एक दूसरे का पूरक और सहायक है। अतः एक के बिना दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस प्रकार किसी एक के लिए हानिकारक रीति का दूसरे पर भी समान रूप से बुरा प्रभाव पड़ेगा। स्त्रियों की शिक्षा के

विषय में विचार करते समय इस बात का सदा विशेष ध्यान रखना चाहिए। पुरुष का बाहरी बातों में प्रमुख स्थान है, अतः उसे उनका विशेष ज्ञान होना चाहिए, और दूसरी ओर गृहकार्य स्त्री का क्षेत्र है, अतः उन्हें गृह बच्चों के पालन-पोषण, उनकी शिक्षा इत्यादि गार्हस्थ्य-सम्बन्धी बातों की विशेष शिक्षा मिलनी चाहिए। परन्तु इसमें यह अर्थ नहीं कि दोनों ज्ञानोपार्जन में कोई दृढ़ और निश्चित दीवार खड़ी की जाय या किसी प्रकार के ज्ञान किसी के लिए बन्द रखे जाँय। किन्तु जब तक दोनों की शिक्षा के माध्यम में उपर्युक्त मौलिक सिद्धान्तों का ध्यान न रक्खा जायगा, स्त्री और पुरुष के जीवन का पूर्ण विकास असम्भव है।

मैं कुछ शब्द इस बारे में भी कहना चाहता हूँ कि अंग्रेजी की शिक्षा हमारी स्त्रियों के लिए आवश्यक है या नहीं। मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि साधारण रूप से पुरुषों या स्त्रियों, किसी के लिए अंग्रेजी की शिक्षा आवश्यक नहीं। सच पूछा जाय तो जीविका-उपार्जन तथा राजनैतिक क्षेत्रों के लिए अंग्रेजी आवश्यक है और मैं ऐसा नहीं मानता कि स्त्रियों को जीविका के लिए अथवा व्यापार के लिए उद्योग करना उचित है। थोड़ी बहुत स्त्रियाँ जो अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करना चाहें या जिन्हें इसकी आवश्यकता हो, पुरुषों के लिए खुले स्कूलों में प्राप्त कर सकती हैं। स्त्रियों के स्कूलों में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार का परिणाम यह होगा कि हमारी असमर्थता और भी बढ़ जायगी।

मैंने लोगों को बहुधा यह कहते सुना और पढ़ा है कि अंग्रेजी साहित्य

का सम्पन्न और विस्तृत क्षेत्र स्त्रियों और पुरुषों के लिए समान रूप से खुला होना चाहिए। मैं समझता हूँ इस प्रकार के दृष्टिकोण में कुछ गलतफहमी है और इससे कुछ आशङ्का है। कोई भी इस क्षेत्र को पुरुषों के लिए खुला और स्त्रियों के लिए बन्द नहीं रखना चाहता। वैसे तो कोई किसी को जिसे साहित्यिक रुचि है समस्त संसार के किसी भी साहित्य के अध्ययन से नहीं रोक सकता किन्तु जब किसी समाज-विशेष को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम निश्चित किया जाय तो कुछ थोड़े से लोगों की आवश्यकता की पूर्ति जिन्होंने अपने भीतर साहित्यिक रुचि पैदा की है, नहीं की जा सकती। अंग्रेजी की शिक्षा और अध्ययन की ओर कम ध्यान देने के लिए कहने से मेरा यह तात्पर्य नहीं कि उन्हें जो सुख उससे मिलता है उससे वंचित रखा जाय, बल्कि यह कि उससे थोड़े ही परिश्रम से वही सुख स्वाभाविक शिक्षा द्वारा प्राप्त हो सकता है। संसार अमूल्य और सुन्दर रत्नों से भरा हुआ है और वे केवल अंग्रेजी के नहीं हैं। दूसरी भाषाएँ भी उसी प्रकार की उच्चकला की जननी होने का गर्व कर सकती हैं। ये सब जनसाधारण के लिए सुगम होना चाहिए और ऐसा तभी हो सकता है जब हमारे यहाँ के शिक्षित लोग हमारी भाषाओं में उसका अनुवाद करें।

केवल शिक्षा का ऐसा कार्यक्रम बना लेने से ही हमारे समाज से बाल-विवाह दूर नहीं होगा और न इससे स्त्रियों को समानता का अधिकार ही प्राप्त हो जायगा। अब हमें बालिकाओं पर विचार करना चाहिए जो शिक्षा के विषय में विवाह के पश्चात् हमारी आँखों से दूर हो जाती

हैं। बाल-विवाह के अकथनीय अगोच्य पाप को जानते हुए भी मातायें अपनी बालिकाओं की शिक्षा या उनके उजड़े जीवन को सुन्दर बनाने का उत्तरदायित्व लेने की नहीं सोच सकतीं। जो पुरुष किसी बालिका से विवाह करता है, उसके भीतर कोई परोपकार की भावना नहीं रहती, किन्तु उसका उद्देश्य केवल वासना की तृप्ति होती है। इन बालिकाओं को कौन मुक्त करेगा ? इस प्रश्न का समुचित उत्तर स्त्रियों के प्रश्न का भी उत्तर होगा। निस्सन्देह इसका सुलझाव कठिन है, पर है यह एक ही, स्पष्टतः स्त्री के प्रश्न को सुलझानेवाला उसका पति ही है। विवाहिता बालिका से यह आशा करना कि वह अपने पति को ठीक कर लेगी, निरर्थक है। अतएव यह कठिन कार्य वर्तमान अवस्था में पुरुष पर ही डालना चाहिए। यदि मुझसे हो सकता तो मैं विवाहिता बालिकाओं की गणना करवाता और उनके सम्बन्धियों का पता लगाता और नैतिक और विनय प्रवचनों द्वारा उन्हें यह समझाने की कोशिश करता कि अपनी सम्पत्ति नाबालिग पत्नियों से सम्बन्धित रखकर वे कितना बड़ा अपराध कर रहे हैं और उन्हें सावधान करता कि इस पाप से उनका तब तक छुटकारा नहीं मिल सकता जब तक कि शिक्षा द्वारा वे अपनी पत्नियों को केवल बच्चे जनने योग्य ही न बनावें, बल्कि उनको पत्नी के योग्य भी बनावें और इस बीच में पूर्ण ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करें।

इस प्रकार बहुत-से ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें भगिनी समाज के सदस्य कार्य कर सकते। कार्य करने के इतने क्षेत्र हैं कि यदि शिक्षित और दृढ़

स्त्री-धर्म क्या है ?

एक बहुत पढ़ी-लिखी बहन का पत्र, कुछ हिस्से निकाल देने के बाद यहाँ देता हूँ :—

आपने अहिंसा और सत्याग्रह के जरिये दुनियाँ को आत्मा का गौरव दिखा दिया है। मनुष्य के पशु-स्वभाव को जीतने की समस्या इन्हीं दो शब्दों से हल हो सकती है।

उद्योग के जरिये शिक्षा एक महान कल्पना ही नहीं है बल्कि हम अपने बच्चों को स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं तो शिक्षा का एकमात्र सही तरीका भी यही है। आप ही ने यह बात कही है और एक ही वाक्य में शिक्षा की सारी विशाल समस्या हल कर दी है। उसकी तामील तो हालत और तजुर्बे से ही तय हो सकती है। मेरी अर्ज है कि स्त्रियों का सवाल भी जरूर हल कर दें। राजाजी कहते हैं कि हम स्त्रियों का कोई सवाल ही नहीं है। शायद राजनीतिक माने में न हो। कदाचित् धर्म के बारे में भी कानून द्वारा इसे निश्चित बनाया जा सकता है, अर्थात् सभी पेशे औरत, मर्द सब के लिए समान रूप से खोल दिये जा सकते हैं।

मगर फिर भी हम स्त्री हैं और स्त्री के गुण-दोष पुरुष से भिन्न हैं, इस बात में अन्तर नहीं पड़ता। हमें अपने स्वभाव के दोषों को दूर करने के लिए अहिंसा और सत्याग्रह के अलावा कुछ और सिद्धान्त भी चाहिए।

पुरुष की तरह स्त्री भी अगर आदमी को ऊँचा उठाने की कोशिश करती है तथा ऐसे नर को अपनी शासनकारी भावना, काम-वासना और दुःख पहुँचाने की अनुभूति आदि से छुटकारा पाने के लिए अहिंसा और अदालतों की जरूरत है, ठीक उसी तरह नारी को भी कुछ ऐसी वस्तुओं की आवश्यकता है जिनसे वह अपने स्वभाव के दोष दूर कर सके, क्योंकि ये दोष पुरुष व स्त्री में भिन्न तरह के हैं और आम तौर पर कहा जाता है कि ये प्रकृति ने स्त्रियों के साथ लगा दिए हैं। स्त्री होने के कारण ही उनके जो स्वाभाविक गुण दोष हैं, उनका जिस तरह लालन पालन और शिक्षण होता है और उनके लिए जैसा वातावरण पैदा हो जाता है, वह सब उनके विरुद्ध पड़ता है।

और ये चीजें यानी उनका स्वभाव, उनकी तालीम और उनका वायु-मंडल, उनके काम में हमेशा रुकावट डालती, उनका रास्ता रोकती और आम तौर पर यह कहने का मौका देती हैं कि 'आखिर तो औरत ही है'। जब मैं कहती हूँ कि स्त्री होना ही उसके गले का हार हो गया है तो मेरा मतलब यही है। मेरे ख्याल से हमारी समस्या ठीक तौर पर हल हो जाय और अपने सुधार का सही तरीका हमारे हाथ लग जाय तो सहानुभूति और कोमलता आदि जो हमारे स्वाभाविक गुण हैं उन्हें बाधक होने के बजाय हम साधक बना सकती हैं। जैसा आपने पुरुषों और बच्चों के बारे में हल बताया है उसी तरह हमारा सुधार भी हमारे ही भीतर से होना चाहिए। मैंने स्वभाव, शिक्षा और वातावरण की बात कही है। अपनी बात साफ समझाने के लिए, मैं एक मिसाल देती हूँ।

कुदरत ने औरत को कोमल, नरम दिल, हमदर्द और बच्चों की माँ बनाया है। इन बातों का असर उस पर अनजान में भी बहुत होता है। इसलिए जब उसे कुछ करना पड़ता है तो वह बेहद भावुक हो जाती है। मर्दों के सम्पर्क में आने पर बड़ी बड़ी गलतियाँ कर बैठती है। जिस वक्त उसे सख्त रहना चाहिए उस वक्त उसका दिल पिघल जाता है। वह जल्दी ही खुश और नाराज हो जाती है, उसे आसानी से अपने पर गर्व हो जाता है और आम तौर पर भोलेपन के काम करती है।

जब मैं आपसे मिलने आयी तब हालाँकि उस मुलाकात की मुझे बड़ी उत्सुकता थी और पहली रात उसका विचार करते करते मुझे नींद भी नहीं आयी थी, फिर भी जब मैं आपके सामने गयी और आपने मुझे बैठ जानेको कहा तो मैं श्रीदेसाई की लम्बी-चौड़ी पीठ की आड़ में जा बैठी। वहाँ से न मैं आपकी बात सुन सकती थी और न आपका मुँह देख सकती थी। यह मेरा कितना भोलापन था। इतना ही नहीं, मैंने देख लिया कि मैं अपनी बात भी नहीं समझा सकती, मेरी जबान ही नहीं चलती थी। इसकी वजह मैं यह समझती हूँ कि मेरे स्वभाव पर भावुकता सवार रहती है और आसानी से काबू के बाहर हो जाती है। अवश्य ही, यह खास दोष तो उचित तालीम से निकल जाता। मगर मैं कह सकती हूँ कि सम्भव है, मैं और कोई ऐसा ही भोलेपन का काम कर बैठूँ।

मेरी एक सखी ने मुझे वे उत्तर दिखाये थे जो उसने राष्ट्रीय योजना-उपसमिति की स्त्रियों के काम के बारे की प्रश्नावली पर लिख

जेते थे। आप अवश्य जानते होंगे कि ये सवाल नमस्कार होते हैं अ
कुछ इस तरह के हैं—देश के जिस भाग में आप रहती हैं, व
हिन्दू ढंग से स्त्रियों को अपने हक में सम्पत्ति रखने, हासिल करने
उत्तराधिकार में मिलने, बेचने या दे डालने का अधिकार है ? जि
प्रदेश रीति-रस्मों से अलग-अलग योग्यता की स्त्रियों को लग
की जरूरत हो जाती है उसके लिए स्त्रियों को उचित शिक्षा और तालीम
देने का क्या व्यवस्था और सुविधाएँ हैं ? वगैरः वगैरः ।

मेरी पत्नी ने प्रश्नों का उत्तर न देकर यह लिखा है—"यह कह
कर भी सच नहीं है कि प्राचीन काल में स्त्रियों को शिक्षा जैसी को
चीज मिलती ही न थी।" उसने यह भी लिखा है कि "वैदिक युग
विवाह होने पर पत्नी को कुटुम्ब में तुरन्त प्रतिष्ठा का स्थान दिया जात
था और वह अपने पति के घर की मालकिन बन जाती थी" आ
आदि। उसने मनुस्मृति से भी प्रमाण दिये हैं।

मैंने उससे पूछा कि जब सवाल आज के जमाने के बारे में पू
गये हैं तो पुराने रीति-रिवाज का हाल लिखने की क्या जरूरत थी
यह यह सोचकर कि निबन्ध के रूप में उत्तर बढ़िया रहता है कुछ
मुँह-ही-मुँह कहती रही और फिर तेज होकर बोली, "श्रीमती······अनुर
का जवाब तो मुझसे भी बुरा है।"

मेरी समझ से मेरी पत्नी की यह भूल ठीक तालीम न मिलने से
और तालीम उसे स्त्री होने के कारण ही नहीं दी गयी। यह
जानता है कि जब कोई सवाल पूछा जाता है तो उसके

जवाब में दूसरे ही विषय पर निबन्ध नहीं लिखना चाहिए। मेरे ख्याल में मुझे उदाहरण देते जाने और अपनी बात समझाते रहने की जरूरत नहीं है। आपको सब प्रकार की स्त्रियों का इतना विशाल अनुभव है कि आप जान गये होंगे कि मेरा यह कहना सही है या नहीं कि अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धांत से स्त्रियाँ सुधर सकती हैं, यही उन्हें मालूम नहीं है।

आपने मुझे 'हरिजन' पढ़ने की सलाह दी थी। मैं शौक से पढ़ती हूँ। मगर अब तक अन्तरात्मा के लिए कोई सलाह मेरे देखने में नहीं आयी। राष्ट्रीय आजादी के लिए कातना और लड़ना तो उस तालीम के कुछ पहलू ही हैं। उनमें समस्या का सारा हल समाया हुआ नहीं दीखता, क्योंकि मैंने ऐसी स्त्रियाँ देखी हैं जो कातती हैं और कांग्रेस के आदर्शों पर अमल करने की कोशिश तो जरूर करती हैं लेकिन फिर भी वही बड़ी बड़ी भूलें कर बैठती हैं जिनका कारण उनका स्त्री होना ही है। मैं पुरुषों के जैसी नहीं बनना चाहती। लेकिन जैसे आपने पुरुषों की पशु-प्रवृत्ति के सुधार के लिए अहिंसा सिखायी है, वैसे हमें भी वह पाठ पढ़ा दीजिए, जिससे हमारा भोलेपन का दोष दूर हो जाय। कृपा करके बताइए, हम कैसे अपने स्वभाव का सदुपयोग करें और अपनी बाधाओं को सुविधा बना लें। यह स्त्री होने का भार हमेशा मेरे मन पर रहता है। जब कभी मैं किसीको नाक-भौं सिकोड़कर यह कहते सुनती हूँ कि 'आखिर स्त्री है' तो मेरी आत्मा में वेदना होती है (अगर आत्मा में भी वेदना हो सकती हो तो)। एक पुरुष से मैंने इन बातों की चर्चा की तो वह मेरी हँसी उड़ाकर कहने लगा, "आपने हमारे लिए

[illegible] करने को [illegible] था ? यह लाठी चलाकर [illegible] रहा था और [illegible] के पास पहुंचा तो उसके [illegible] पूछने के [illegible] उसने अपने कन्धों से धक्का देकर उसे गिराने की कोशिश की। यह अपने [illegible] यह समझता था कि मैं उसे गिरा दूँगा। आपकी बात से मुझे यह याद आता है। आप जो कहती हैं, यह मनोवैज्ञानिक बात है। आप उसे समझने और सुलझाने का जो प्रयत्न करती हैं उससे मुझे हँसी आती है।"

स्त्रियों का काम

प्रश्न—आप कहते हैं 'स्त्री को घर छोड़कर घर-रक्षा के लिए कन्धे पर बन्दूक धरने के लिए कहना या प्रोत्साहित करने से स्त्री और पुरुष दोनों का ही नाश होगा।' यह तो फिर जङ्गली बनना हुआ। लेकिन उन करोड़ों महिलाओं के लिए क्या कहिएगा, जो कृषि करतीं तथा कारखानों में मजदूरी करती हैं। उन्हें भी तो घर त्यागकर जीविका कमानी पड़ती है। क्या आप उद्योग-धन्धों को मिटा देंगे? और फिर वही पाषाण-युग को खींच लावेंगे? क्या यह फिर-से जङ्गली बनना या विनाश का आरम्भ नहीं होगा? आपकी कल्पना में समाज की वह नयी व्यवस्था कौन-सी होगी जिसमें स्त्रियों से काम लेने में पाप न होगा?

उत्तर—करोड़ों स्त्रियों को अगर बरबस घर छोड़कर अपनी जीविका कमानी पड़ती है तो यह बुरी बात है पर यह उतनी बुरी बात नहीं है

जितनी कन्धों पर बन्दूक रखना। वास्तव में मजदूरी करने में कोई बर्बरता नहीं है। अपने घरों की देख-भाल करते हुए अगर स्त्रियाँ स्वेच्छा से खेतों पर भी काम करती हैं तो इसमें मुझे कोई बर्बरता दिखाई नहीं पड़ती। मेरी कल्पना में समाज की जो नयी व्यवस्था है उसमें सभी अपने अपने सामर्थ्य के अनुसार काम करेंगे और उन्हें अपने श्रम का उचित मूल्य मिलेगा। इस नयी व्यवस्था में स्त्रियाँ थोड़े समय के लिए काम करेंगी, पर उनका मुख्य काम घर की देख-भाल करना होगा। चूँकि मैं अपनी नयी व्यवस्था में बन्दूक को स्थायी चीज नहीं मानता इसलिए जहाँ तक पुरुषों का सम्बन्ध है वहाँ भी उसका प्रयोग धीरे धीरे कम होता जायगा, जब तक उसका इस्तेमाल होता रहेगा तब तक उसे एक अनिवार्य बुराई समझकर सहन किया जायगा। पर मैं जान बूझकर इस बुराई की छूत स्त्रियों को नहीं लगने दूँगा।

—१०१—

स्त्रियों का विशेष कर्त्तव्य

यूरोप-संकट पर आपने जो लेख लिखा है, उसे मैंने बड़े चाव से पढ़ा। यह बिल्कुल स्वाभाविक था आप इस समय ऐसा लेख लिखें। जब मानवता सर्वनाश के गर्त पर हो, आप अपनेको कैसे रोक सकते थे!

प्रश्न यह है कि क्या संसार उसपर ध्यान देगा?

इंगलैंड से आये हुए मित्रों के पत्र-व्यवहार देखने से पता चलता है कि उस भयानक सप्ताह में लोगों को अत्यन्त कष्ट सहन करना पड़ा। और मैं निश्चयपूर्वक जानता हूँ कि कुछ अंश तक यही बात संसार भर के लिए लागू है। पैशाचिक साधनों, आधुनिक युद्ध के और उनके परिणामस्वरूप जो भयानक पाशविकता और हत्या होती है, उसकी कल्पना मात्र से ही लोग पहले की अपेक्षा दूसरे ही ढंग से सोचने लगे हैं। एक अंगरेज मित्र ने लिखा है "युद्ध के रुक जाने का समाचार सुनकर लोगों ने जो आराम की साँस ली और ईश्वर के प्रति हर प्राणी ने जो अनुग्रहपूर्ण विचार प्रकट किये ऐसी चीजें हैं जिन्हें मैं कभी नहीं भूल सकता।" फिर भी अकथनीय कष्टों का भय, अपने निकटवर्ती सम्बन्धियों को खोने की आशङ्का, अपने देश को पराजित देखने की मानहानि, ये ही ऐसे कारण हैं जिनसे लोग युद्ध से घृणा करते हैं। क्या दूसरे राष्ट्र के पराजय से युद्ध रुक जाने पर हम प्रसन्न हैं? क्या यदि मर्यादा के त्याग की चर्चा हमसे की गयी होती तो हम और तरह से सोचते? हम युद्ध से इसलिए घृणा करते हैं कि हम जानते हैं, झगड़ों के निर्णय का

यह अच्छा मार्ग नहीं है या हमारी यह घृणा हमारे भय और आशंका के कारण है ? यदि युद्ध को संसार से मिटाना है तो इन प्रश्नों का समुचित उत्तर मिलना आवश्यक है।

इस संकट के समाप्त होने पर हम क्या देखते हैं ? शस्त्रीकरण के लिए पहले से भी अधिक जोरदार जाति, सभी सुलभ साधनों—पुरुष, स्त्री, धन, योग्यता, मस्तिष्क—का ऐसा विस्तृत और वृहत अभूत पूर्व संगठन जो युद्ध की प्रतीक्षा कर रहा है।

कहीं से भी स्पष्ट घोषणा नहीं हो रही है कि "युद्ध नहीं होगा।" क्या इस बात का द्योतक नहीं कि युद्ध आज के लिए चाहे समाप्त हो गया हो, किन्तु डैमोक्लिज की तलवार की तरह अब भी हमारे सिरों पर लटक रहा है। स्त्री की हैसियत से मुझे दुःख है कि हमारी जाति ने संसार की शान्ति-स्थापना में वह योग नहीं दिया जो उसे देना चाहिए था। यह जानकर मुझे बड़ा दुःख होता है कि युद्ध-भूमि पर सचमुच लड़ने के लिए स्त्रियों का संगठन किया जा रहा है और फिर युद्ध के दिनों में स्त्रियों ही का हृदय निचोड़ा जाता है और उन्हीं की आत्मायें विध्वंस होती हैं, जिनकी पूर्ति कभी नहीं हो सकती। इन सबका वर्णन नहीं किया जा सकता। हम लोगों ने हर युग में श्रेष्ठतर मार्ग क्यों नहीं चुना ? हमने निर्मम, पाशविक और निर्दय शक्ति के समक्ष घुटने क्यों टेके ? यह हमारे आत्मिक विकास की दुःखद व्याख्या है। हमने उच्च आदर्श को नहीं समझा। मुझे अब पूर्ण विश्वास हो गया है कि यदि स्त्रियों ने हृदय से

अहिंसा के महत्व और उसकी शक्ति को समझा होता तो संसार में शांति और सुख ही होते।

"आप हम भारतीय स्त्रियों का प्रोत्साहन और संगठन क्यों नहीं करते! आप हमें दाहिना हाथ बनाने की ओर ध्यान क्यों नहीं देते ? कई बार मेरी इच्छा हुई कि आप केवल इसी काम के लिए एक बार भारतवर्ष भर का भ्रमण कीजिए। मुझे विश्वास है कि आपको स्त्रियों का आश्चर्य-जनक सहयोग मिलेगा, क्योंकि भारतीय नारियों का हृदय दृढ़ है और संसार में शायद ही किसी और देश की नारियों ने इतना सुन्दर त्याग किया हो। यदि आप हमें कुछ बनाएँ तो हम दुःख और शोक में डूबते हुए संसार को शान्ति का मार्ग बताने में समर्थ हो सकेंगी।"

एक महिला के इस पत्र को प्रकाशित करते हुए मुझे कुछ हिचक हो रही है परन्तु मैं अपनी सीमाएँ जानता हूँ। मुझे लगता है कि मेरे भ्रमण करने के दिन समाप्त हो गये, अब तो मुझे चाहिए लेखों द्वारा जो कुछ कर सकता हूँ करूँ, किन्तु मौन प्रार्थना में मेरा विश्वास बढ़ता जा रहा है। यह अपने तईं एक कला है और शायद सबसे ऊँचे, जिसके लिए अत्यन्त परिष्कृत प्रयत्नों की आवश्यकता है। मैं मानता हूँ कि अहिंसा के सर्वोत्तम रूप का प्रदर्शन स्त्री ही का कार्य है। किन्तु एक स्त्री के हृदय को द्रवित करने के लिए पुरुष की क्या जरूरत ? यदि यह पत्र केवल मुझे यह जानकर के (जैसा माना जाता है) मैं अहिंसा का सामाजिक रूप से प्रयोग करने [illegible] सबसे बड़ा ज्ञाता हूँ, तो मैं नहीं चाहता कि भारतीय स्त्रियों को उपदेश [illegible]ता फिरूँ। मैं अपने संवाददाता को यह विश्वास दिलाता कि मुझमें इच्छा

ी कमी नहीं जो मुझे उनकी थ्योरी के अनुसार कार्य करने से रोक रही हो।
रा विचार है कि यदि कांग्रेस के लोग अपना विश्वास अहिंसा में दृढ़ रक्खें
हैं और अहिंसात्मक कार्यक्रम पर पूर्णरूप से मन लगाकर चलते रहें, तो
स्त्रियाँ स्वयं बदल जायेंगी और सम्भव है उन्हीं में से कोई ऐसी निकल
ाये जो मेरी अपेक्षा कहीं आगे निकल जाय, जहाँ पहुँचने की मुझे आशा
ी न हो, क्योंकि स्त्री पुरुष की अपेक्षा अहिंसा के विषय में खोज करने
था निर्भीकतापूर्वक कार्य करने के लिए अधिक उपयुक्त है। जिस प्रकार
ा विश्वास है, पाशविक शौर्य में पुरुष स्त्री से बढ़कर है, उसी प्रकार
ात्मत्याग में स्त्री पुरुष की अपेक्षा सदा कहीं बढ़कर है।

महिलाएँ और सैनिकता

यूरोप में यह प्रश्न पूछा गया कि स्त्रियाँ सैनिकता के विरुद्ध किस
कार लड़ें। इटली की प्राइवेट......में गांधीजी से कहा गया कि
इटली की स्त्रियों को कुछ ऐसी बातें बतायें जो भारत की स्त्रियाँ
सीख सकें।

पेरिस में महात्माजी ने कहा—"यदि स्त्रियाँ भूल जाँय कि वे पुरुषों
ो कम शक्तिशाली हैं तो पुरुषों की अपेक्षा युद्ध के विरोध में कहीं
धिक कार्य कर सकती हैं। आप लोग स्वयं सोचिए यदि सिपाहियों
और सेनानायकों की मातायें, स्त्रियाँ और बालिकायें उन्हें किसी भी
प में युद्ध में भाग लेते हुए न देखना चाहें तो क्या हो।"

लासन में उन्होंने कहा, "मैं नहीं समझता कि मुझमें युरोप की स्त्रियों को सन्देश देने की शक्ति है। यदि मेरे सन्देश को सुनकर वे क्रोधित न हों, तो मैं चाहता हूँ कि वे अपना ध्यान भारत की स्त्रियों की ओर ले जायें जो गतवर्ष पूर्ण रूप से एकतापूर्वक लड़ने को खड़ी हुई और मैं सचमुच विश्वास करता हूँ कि युरोप को अहिंसा की शिक्षा उसकी स्त्रियों द्वारा ही मिल सकती है। यहाँ मैं इसका समर्थक हूँ कि नारी आत्मत्याग का साक्षात् रूप है किन्तु दुर्भाग्यवश आज उसे इसका ज्ञान नहीं रहा कि उसकी सत्ता पुरुष से कितनी ऊँची है। जैसा कि टाल्सटाय कहा करते थे "स्त्रियाँ पुरुष के वश में होकर चल रही हैं।" यदि वे अहिंसा की शक्ति को समझ लें तो उन्हें पुरुषों से शक्तिहीन समझा जाना कभी पसन्द न होगा।"

स्त्रियों की एक टोली से बात करते हुए उन्होंने कहा, "अहिंसात्मक युद्ध का सबसे बड़ा गुण यह है कि स्त्रियाँ उसी प्रकार भाग ले सकेंगी जैसे पुरुष। अहिंसात्मक युद्ध में स्त्रियों को ऐसी कोई सुविधा नहीं होती और स्त्रियों ने गत अहिंसात्मक युद्ध में पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली भाग लिया था। और इसका कारण बिल्कुल सीधा-सादा है। अहिंसात्मक युद्ध में अधिक से अधिक सहनशक्ति की आवश्यकता होती है और स्त्रियों से अधिक और पवित्र सहनशक्ति है किसमें? भारतवर्ष की स्त्रियों ने पर्दे को फाड़ फेंका और देश के लिए लड़ने को मैदान में आ गयीं। उन्होंने देखा कि देश उनसे गृहस्थी के कामों के अतिरिक्त कुछ और माँग रहा था। उन्होंने गैरकानूनी नमक बनाये,

विदेशी कपड़े और नशीली वस्तुओं की दूकानों पर धरने दिये और ग्राहकों तथा दूकानदारों दोनों को रोकने की चेष्टा की। गत में वे पीनेवालों के साथ बड़े साहस और उदारता के साथ उनके अड्डों पर गईं। उन्होंने जेल की सजायें काटीं और लाठियों की चोटें खाईं और उनकी तरह साहस बहुत कम पुरुषों ने दिखाया था। यदि पाश्चात्य स्त्रियाँ कार्यक्षमता में पुरुषों से जीतना चाहती हों तो भारतीय स्त्रियों के पास कोई मंत्र या शिक्षा नहीं है। उन्हें अपने पतियों और बालकों को जेलों की इज्जत करने के लिए भेजकर आनन्द नहीं अनुभव करना चाहिए और न उन्हें इस बहादुरी के लिए बधाई ही देनी चाहिए।"

— महादेव देसाई

भारतवर्ष की महिलाओं से

दण्डी यात्रा के अवसर पर गांधीजी ने भारतवर्ष की स्त्रियों से निम्न अपील की थी :—

कुछ बहनों में "इस पवित्र संग्राम में भाग लेने" की बड़ी उत्सुकता दिखाई देती है, यह बहुत स्वस्थ चिह्न है। इससे यह पता चलता है कि स्वराज्य पर के विरुद्ध विदेशी आन्दोलन चाहे जितना आक्षेप करते न हों, उनके लिए इसमें अपने को शामिल करने ही के बदले में आनन्द लेना है।

इस अहिंसात्मक संग्राम में उन्हें पुरुषों से कहीं अधिक भाग लेना चाहिए। स्त्रियों को पुरुषों से हीनतर कहना उनका अपमान करना

...ही होगा। किन्तु जब तक नीचे से जोर न लगाया जायगा, कानून ...गा ही नहीं।

इससे किसीको विरोध न होगा कि ये दोनों राष्ट्र के लिए परम ...वश्यक हैं। नशीली वस्तुओं से लोगों की चारित्रिक शक्ति क्षीण हो...ती है, विदेशी कपड़े से देश की आर्थिक दशा बिगड़ती है और इसमें ...खों आदमियों की जीविका छिनती है। प्रत्येक दशा में घर पर ...पत्ति आती है और इसे स्त्रियों को ही सहना पड़ता है। वे स्त्रियाँ ...नके पति मद्यपान करते हैं जानती हैं कि इस आदत का कितना घातक ...रिणाम होता है। हमारे गाँवों की तमाम स्त्रियाँ यह भी जानती हैं कि ...एँ कैसी होती हैं। आज चर्खा-संघ में एक लाख से ऊपर स्त्रियाँ ...र दस हजार से कुछ कम पुरुष हैं।

भारत की स्त्रियों को चाहिए कि वे इन दोनों बातों को अपने हाथ ...लें और उनमें विशेष ज्ञान प्राप्त करें। इस प्रकार वे राष्ट्र की ...सेवा के लिए पुरुषों से अधिक काम करेंगी। इससे उनमें शक्ति ...र आत्मविश्वास आयेगा जिससे अब तक वे दूर रही हैं।

उनकी अपील से विदेशी कपड़े के दुकानदार, शराब और नशीली ...वस्तुओं के रोजगारियों तथा उनका प्रयोग करनेवाले लोगों का हृदय ...रय ही पिघलेगा। कम से कम स्त्रियों से यह आशा तो नहीं की जा...ती कि वे इन बातों में से किसीके साथ हिंसात्मक व्यवहार करेंगी या ...ने की इच्छा करेंगी और न सरकार ही इस प्रकार के स्वयंसेवकों ...तो छोड़ क्या सकती है!

दाय ही होगा। किन्तु जब तक नीचे से जोर न लगाया जायगा, कानून बनेगा ही नहीं।

इससे किसीको विरोध न होगा कि ये दोनों राष्ट्र के लिए परम आवश्यक हैं। नशीली वस्तुओं से लोगों की चारित्रिक शक्ति क्षीण हो जाती है, विदेशी कपड़े से देश की आर्थिक दशा बिगड़ती है और इससे लाखों आदमियों की जीविका छिनती है। प्रत्येक दशा में घर पर आपत्ति आती है और इसे स्त्रियों को ही सहना पड़ता है। वे स्त्रियाँ जिनके पति मद्यपान करते हैं जानती हैं कि इस आदत का कितना घातक परिणाम होता है। हमारे गाँवों की तमाम स्त्रियाँ यह भी जानती हैं कि बेकारी कैसी होती है। आज चर्खा-संघ में एक लाख से ऊपर स्त्रियाँ और दस हजार से कुछ कम पुरुष हैं।

भारत की स्त्रियों को चाहिए कि वे इन दोनों कामों को अपने हाथ में लें और उनमें विशेष ज्ञान प्राप्त करें। इस प्रकार वे राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए पुरुषों से अधिक काम करेंगी। इससे उनमें शक्ति और आत्मविश्वास आयेगा जिससे अब तक वे दूर रही हैं।

उनकी अपील से विदेशी कपड़े के दूकानदार, ग्राहक और नशीली पेय पदार्थों के रोजगारियों तथा उनका प्रयोग करनेवाले लोगों का हृदय अवश्य ही पिघलेगा। कम से कम स्त्रियों से यह आशङ्का नहीं की जा सकती कि वे इन चारों में से किसीके साथ दु[illegible] गी या करने की इच्छा करेंगी और न [illegible] न्तिपूर्ण और...से आँख

परिणाम भी कम महत्वपूर्ण न होगा। नशीली वस्तुओं का प्रयोग रोकने से २५ करोड़ लगान की कमी होगी और विदेशी कपड़े के बहिष्कार से भारतवर्ष के करोड़ों आदमी मिलकर कम से कम ६० करोड़ की बचत करेंगे। नमक के कर से यह कहीं लाभदायक होगा। इन दोनों कामों की सफलता से नमक-कर के रद हो जाने की अपेक्षा अधिक आर्थिक लाभ होगा। दोनों सुधारों के नैतिक मूल्य का अनुमान भी नहीं किया जा सकता।

लेकिन कुछ बहनें कह सकती हैं कि इसमें कोई उत्तेजना और नाटकीयता नहीं है। यदि वे पूरा मन लगाकर काम करें तो उन्हें काफ़ी उत्तेजना और नाटकीयता मिलेगी। आन्दोलन समाप्त कर चुकने के पहिले सम्भवतः उन्हें जेल जाना पड़ेगा। बहुधा उनकी मानहानि और शारीरिक आघात भी हो सकता है। इस प्रकार की मानहानि और आघात सहन करने का उन्हें गर्व होगा। ऐसी सहनशीलता से इसका अन्त भी शीघ्र ही होगा। यदि भारत की स्त्रियाँ मेरी अपील के अनुसार काम करना चाहती हैं, तो उन्हें शीघ्रता करनी चाहिये। यदि भारतवर्ष भर का कार्य एकसाथ न उठाया जा सके, तो वे सूबे, जो संगठन कर सकते हैं, करें। दूसरे सूबे भी बाद उनका अनुकरण करेंगे।

मद्यपान का अभिशाप

एक बहिन लिखती हैं :—

गाँव में जाने पर जब मैंने सुना कि इन आदमियों में मद्यपान ने भयंकर उत्पात मचा रक्खा है, तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। कुछ स्त्रियों की आँखों में आँसू भरे हुए थे। वे क्या कर सकती हैं ? एक भी ऐसी स्त्री नहीं, जो हमारे बीच से सदा मद्य को बाहर निकाल देने को पसन्द न करती हो। यह न जाने कितने घरेलू दुःखों, गरीबी और गिरे हुए स्वास्थ्य और शरीरनाश का कारण है। हम मामूली स्त्री को ही पुरुष के इस दुर्व्यसन का बोझ उठाना पड़ता है। मैं स्त्रियों को क्या करने की सलाह दे सकती हूँ ? क्रोध और उसके साथ निर्दयता का सामना करना बड़ा ही कठिन है। मैं कितना चाहती हूँ कि इस प्रान्त के नेता अपनी समझ, शक्ति और दिमाग साम्प्रदायिक बटवारा के अन्याय पर खर्च करने की जगह इस बुराई को दूर करने में लग जाते। हम ऐसी मामूली चीजों के लिए असली बातों की उपेक्षा कर रहे हैं, जो हमारे देशवासियों की नैतिक मर्यादा में उन्नति होने पर अपने आप हल हो जा सकती हैं। क्या आप मद्यपान के सम्बन्ध में लोगों से एक लिखित अपील नहीं कर सकते ? इस व्याधि के कारण लोगों को पूर्णतः महानाश की ओर जाते देखकर महाशोक होता है।

जो पीते हैं, उनसे मैं अपील करूँगा तो यह व्यर्थ जायगी और ऐसा होना लाज़िमी है। वे 'हरिजन' नहीं पढ़ते। अगर पढ़ते भी हैं तो

मद्यपान का अभिशाप

एक बहिन लिखती हैं :—

गाँव में जाने पर जब मैंने सुना कि इन आदमियों में मद्यपान ने भयंकर उत्पात मचा रक्खा है, तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। कुछ स्त्रियों की आँखों में आँसू भरे हुए थे। वे क्या कर सकती हैं? एक भी ऐसी स्त्री नहीं, जो हमारे बीच से सदा मद्य को बाहर निकाल देने को पसन्द न करती हो। यह न जाने कितने घरेलू दुःखों, गरीबी और गिरे हुए स्वास्थ्य और शरीरनाश का कारण है। हम मामूली स्त्रियों को ही पुरुषों के इस दुर्व्यसन का बोझ उठाना पड़ता है। मैं स्त्रियों को क्या करने की सलाह दे सकती हूँ? क्रोध और उसके साथ निर्दयता का सामना करना बड़ा ही कठिन है। मैं कितना चाहती हूँ कि इस प्रान्त के नेता अपनी समझ, शक्ति और दिमाग साम्प्रदायिक बटवारा के अन्याय पर खर्च करने की जगह इस बुराई को दूर करने में लग जाते। हम ऐसी मामूली चीजों के लिए असली बातों की उपेक्षा कर रहे हैं, जो हमारे देश स्त्रियों की नैतिक मर्यादा में उन्नति होने पर अपने आप हल हो जा सकती हैं। क्या आप मद्यपान के सम्बन्ध में लोगों से एक लिखित अपील नहीं कर सकते? इस व्याधि के कारण लोगों को पूर्णतः महानाश की ओर जाते देखकर महाशोक होता है।

जो पीते हैं, उनसे मैं अपील करूँगा तो ऐसा होना लाजिमी है। वे 'हरिजन'

सम्बन्धी आँकड़ों तथा जिन कारणों से मद्यपान की ओर प्रवृत्ति होती है उनका और उनसे छूटने के उपायों का पूरी तरह अध्ययन करें। उन्हें पिछली बातों से सबक लेना चाहिये और जानना चाहिये कि पियक्कड़ों से मद्यपान छोड़ देने की अपील करने मात्र से स्थायी प्रभाव नहीं पड़ सकता। इस व्यसन को एक रोग समझकर इसकी चिकित्सा करनी चाहिये। दूसरे शब्दों में कुछ स्त्रियों को शोधी विद्यार्थियों का रूप ग्रहण करना होगा और इस विषय में अनेक प्रकार के शोध करने होंगे। सुधार की हरेक शाखा में लगातार अध्ययन की जिससे अपने विषय पर पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त हो जाय, जरूरत है। जिन सुधार आन्दोलनों की त्रुटियाँ स्वीकार की जा चुकी हैं, उनकी आंशिक या सम्पूर्ण असफलता के मूल में अज्ञान ही रहा है। क्योंकि प्रत्येक कार्य के लिए जो सुधार के नाम पर चलता है जरूरी नहीं कि वह इस नाम से पुकारे जाने के योग्य हो।

नवविवाहितों से

हूदी में गांधी सेवा संघ की वार्षिक सभा में गांधीजी ने अपनी पोती और महादेव देसाई के लड़कों का विवाह संस्कार किया। संस्कार समाप्त होने पर उन्होंने नवविवाहितों से कहा :—

तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मेरा संस्कारों में वहीं तक विश्वास है जहाँ तक वे हमारे भीतर कर्तव्य को जाग्रत करते हैं। जब से मैंने अपने

रे में सोचना शुरू किया, मेरा नहीं बिगाड़ रहा है। तुम लोगों ने
न मन्त्रों का उच्चारण किया है और जो प्रतिज्ञाएँ ली हैं, वे सभी
स्कृत में थीं और उनका अनुवाद तुम्हारे वास्ते किया गया। हमारे
हाँ संस्कृत भाषा थी, क्योंकि मैं जानता हूँ, संस्कृत शब्दों में ऐसी
क्ति है कि किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकती है।

पति इस संस्कार के अवसर पर जो इच्छाएँ प्रकट करता है उनमें
एक यह है कि उसकी स्त्री सुन्दर और स्वस्थ पुत्र की माँ हो। इसमें
के कोई धक्का नहीं लगा। इसका अर्थ यह नहीं कि सन्तानोत्पत्ति
वश्यक है। परन्तु यह कि यदि सन्तानोत्पत्ति करनी हो तो धार्मिक
प से विवाह-संस्कार होना आवश्यक है। जिसे सन्तान उत्पन्न करने की
च्छा न हो उसे विवाह करने की बिलकुल आवश्यकता नहीं। वासना की
त के लिए किया विवाह ही नहीं है, व्यभिचार है। अतः आज के
कार का यही अर्थ है कि संभोग तभी किया जाय जब स्पष्टतः सन्तान
इच्छा हो। और ऐसा प्रार्थना के साथ करना चाहिये। इसके पहले
काम प्रेमाचार नहीं है जिसका उद्देश्य लैंगिक उत्तेजना और सुख की
सि है।

इस प्रकार जीवन भर में स्त्री-पुरुष केवल एक बार संभोग कर
ते हैं, यदि उन्हें दूसरे सन्तान की इच्छा न हो। जो स्वस्थ नहीं हैं
के संभोग करने की आवश्यकता नहीं और यदि वे ऐसा करें तो
ल व्यभिचार होगा। यदि तुमने यह समझा हो कि विवाह वासना-
के लिए ही किया जाता है तो इसे भूल जाओ। यह एक अंध-

निश्चय ही न होना चाहिये। मैं प्लेटो के मतानुसार किये गये विवाह में विश्वास नहीं करता। कुछ लोगों ने स्त्रियों की रक्षा के लिए विवाह किये थे, किन्तु उनका शारीरिक एकता का उद्देश्य न था और इस तरह के विवाह कम हुए भी हैं। पवित्र विवाहित जीवन के विषय में जो कुछ मैंने लिखा है, उसे तुम्हें पढ़ना चाहिये। मैं महाभारत मे प्रतिदिन जो कुछ पढ़ता हूँ उसका मेरे ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ रहा है। ऐसा कहा गया है कि व्यास ने नियोग किया था वे सुन्दर नहीं, वरन् इसके विरुद्ध ही थे। ऐसा दिखाया गया है कि वे भयानक थे और उन्होंने संयोग के पूर्व अपने सारे शरीर में घी लगाया था। उन्होंने संभोग वासना के लिए नहीं बल्कि संतानोत्पत्ति के लिए किया था। संतान की इच्छा स्वाभाविक है और जब एक बार यह इच्छा पूरी हो जाय फिर पति-पत्नी मिलन की आवश्यकता नहीं।

मनु ने पहले बच्चे को धर्मज कहा है—कर्तव्य की भावना से उत्पन्न किया गया—और उसके बाद वालों को कामज। लैङ्गिक सम्बन्धी नियमों का यह सार है और ईश्वर नियम के अतिरिक्त है ही क्या? नियमपूर्वक चलना ही ईश्वर की आज्ञा मानना है। याद रक्खो, तुमसे तीन बार दुहराने को कहा गया था। मैं किसी प्रकार नियमों का उल्लंघन नहीं करूँगा। यदि थोड़े भी लोग नियमपूर्वक रहते तो एक हृष्ट पुष्ट और सच्चे पुरुषों और स्त्रियों की जाति बन जाती।

याद रक्खो, मुझे अपने विवाहित जीवन का आनन्द तब मिला, जब मैंने 'बा' की ओर वासना की दृष्टि से देखना छोड़ दिया। मैंने उस

मन से आत्मसंयत पुरुष को दिन प्रति दिन अधिक शक्ति और शान्ति प्राप्त होती है। सब से पहले विचारों का संयम होना चाहिये। अपनी कमी का अनुभव करो और जो तुम कर सको उतना ही करो। मैंने तुमको आदर्श बताया है और तुम इसे प्राप्त करने की यथाशक्ति चेष्टा करो। यदि तुम असफल रहे तो दुःख और लज्जा की बात नहीं। मैंने यही बताया है कि यज्ञोपवीत-संस्कार की भाँति विवाह भी एक पवित्र संस्कार और नया जन्म है। मेरे कथन से तुम्हें कमजोरी और भय नहीं मानना चाहिये। विचार, शब्द और कार्य का पूर्ण सामंजस्य प्राप्त करना ही सदा तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिए। विचारों को पवित्र रक्खो, फिर सब ठीक हो जायगा। विचारों से अधिक शक्तिशाली कुछ नहीं है। कर्म शब्द का और शब्द विचार का अनुगामी है। सारा संसार एक महान विचार का परिणाम है और जब विचार महान है और पवित्र होता है तो उसका फल महान और पवित्र ही होता है। यह पवित्र आदर्श तुम्हारा कवच बने, यही मेरी कामना है और मैं विश्वास दिलाता हूँ कि किसी प्रकार की लालच तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचा सकती और न किसी प्रकार की अपवित्रता ही तुम्हें छू सकती है।

जो तमाम संस्कार बताये गये हैं, उन्हें याद करो। मधुपर्क संस्कार ही ले लो। सारा संसार मधुमय है और सबको अपने अपने भाग लेने पर तुम भी अपना भाग लो। इससे एक भाव के साथ भाग का बोध होता है।

एक वर ने पूछा—क्या यदि सन्तानोत्पत्ति न करना हो, तो

आश्चर्यजनक निष्कर्ष

प्रकाशक की भूमिका के अनुसार विलियम आर थर्सटन संयुक्त राष्ट्र में एक मेजर थे, जिसमें उन्होंने दस साल काम किया था। और इतने समय में उन्होंने चीन इत्यादि कई देशों के विषय में विभिन्न अनुभव किये। उन्होंने अपनी यात्राओं में विवाह के नियमों और रीति रिवाजों का अध्ययन किया और फलस्वरूप उन्हें इसपर एक पुस्तक लिखने की इच्छा हुई। इस पुस्तक में जिसका नाम 'विवाह के सम्बन्ध में थर्सटन के विचार' है और जो गतवर्ष न्यूयार्क के टिफैनी प्रेस से निकली है, केवल ३२ पृष्ठ हैं और वह एक घण्टे से कम में पढ़ी जा सकती है। लेखक ने विस्तृत रूप से तर्क वितर्क नहीं किया है, बल्कि कुछ निष्कर्ष निकाले हैं जो प्रकाशक के मतानुसार आश्चर्यजनक हैं। प्राक्कथन में लेखक ने यह निश्चित रूप से कहा है कि उनके निष्कर्ष, युद्ध के व्यक्तिगत अनुभवों, हकीमों के निरीक्षणों और सामाजिक स्वास्थ्य-पाठ तथा औषधि-सम्बन्धी गणना के आधार पर निकाले गये हैं। उनके निष्कर्ष ये हैं।

१—"प्रकृति सदा से यही चाहती है कि स्त्री अपने निवास और भोजन के लिए तथा सन्तानोत्पत्ति का स्वाभाविक अधिकार प्राप्त करने के लिए पुरुष के साथ बँधी रहे और वह एक ही घर और शय्या सेवन करने को, चाहे वह गर्भिणी हो या न, बाध्य रहे।"

२—"विवाहित जीवन में प्रतिदिन जो कलह और अशान्ति प्रचलित सामाजिक नियमों और रीति रिवाजों के कारण उत्पन्न होते हैं, उनसे ६•

समय संयम की प्रतिज्ञा ली जब पूर्ण युवक था और समाज द्वारा स्वीकृ
रूप से विवाहित जीवन का आनन्द ले सकता था। एकाएक मुझे ज्ञा
हुआ कि मेरा जन्म एक विशेष संदेश देने को हुआ था। जब मेरा विवा
हुआ था तो मैंने ऐसा नहीं जाना था लेकिन सचेत होने पर मैंने दे
कि विवाह जिस संदेश को लेकर मेरे पास आया था, विवाह उसी के लि
था। मैंने अपना धर्म पहचाना। हमें सच्चा सुख प्रतिज्ञा लेने के बाद
मिला। वैसे तो 'बा' दुबली पतली दिखाई देती हैं, किन्तु उनका गठ
सुन्दर है और वे सुबह से शाम तक काम करती हैं। यदि मैं उन्हें अप
वासना का साधन बनाये रहता तो ऐसा वह कभी नहीं कर पातीं।

फिर भी इस विचार से कि मैंने कुछ वर्ष तक विवाहित जीवन क
भोग कर लिया था, मैं देर से सचेत हुआ। ठीक समय पर जगाये ज
रहे हो, यह तुम्हारा सौभाग्य है। मेरे विवाह के समय परिस्थिति
बड़ी बुरी थीं और तुम्हारे लिए परिस्थितियाँ बड़ी मंगलसूचक हैं। मुझ
एक ही चीज थी जो मुझे रास्ता दिखाती रही और वह थी सत्यता
इसीने मुझे बचाया। सत्य मेरे जीवन की नींव है। ब्रह्मचर्य औ
अहिंसावाद मे सत्य से ही आये। तुम कुछ भी करो, तुम्हें अपने औ
संसार के प्रति सच्चा होना चाहिये। अपने विचारों को मत छिपाओ।
यदि उन्हें प्रकट करने में लज्जा आती हो, तो उनको सोचना और भी
लज्जाजनक है।

आश्चर्यजनक निष्कर्ष

प्रकाशक की भूमिका के अनुसार विलियम आर थर्स्टन संयुक्त राष्ट्र के एक मेजर थे, जिसमें उन्होंने दस साल काम किया था। और इतने समय में उन्होंने चीन इत्यादि कई देशों के विषय में विभिन्न अनुभव किये। उन्होंने अपनी यात्राओं में विवाह के नियमों और रीति रिवाजों का अध्ययन किया और फलस्वरूप उन्हें इसपर एक पुस्तक लिखने की इच्छा हुई। इस पुस्तक में जिसका नाम 'विवाह के सम्बन्ध में थर्स्टन के विचार' है और जो गारफर्ड न्यूयार्क के टिफेनी प्रेस से निकली है, केवल ३२ पृष्ठ हैं और यह एक घण्टे से कम में पढ़ी जा सकती है। लेखक ने विस्तृत रूप से तर्क वितर्क नहीं किया है, बल्कि कुछ निष्कर्ष निकाले हैं जो प्रकाशक के मतानुसार आश्चर्यजनक हैं। प्राक्कथन में लेखक ने यह निश्चित रूप से कहा है कि उनके निष्कर्ष, युद्ध के व्यक्तिगत अनुभवों, दम्पतियों के निरीक्षणों और सामाजिक स्वास्थ्य-पाठ तथा औषधि-सम्बन्धी गणना के आधार पर निकाले गये हैं। उनके निष्कर्ष ये हैं।

१—"प्रकृति सदा से यही चाहती है कि स्त्री अपने निवास और भोजन के लिए तथा सन्तानोत्पत्ति का स्वाभाविक अधिकार प्राप्त करने के लिए पुरुष के साथ बँधी रहे और वह एक ही घर और शय्या सेवन करने को, चाहे वह गर्भिणी हो या न, बाध्य रहे।"

२—"विवाहित जीवन में प्रतिदिन जो कलह और अशान्ति प्रचलित सामाजिक नियमों और रीति रिवाजों के कारण उत्पन्न होते हैं, उनसे ६०

प्रतिशत स्त्रियाँ अंशतः वेश्याओं का जीवन व्यतीत करती हैं। ऐसा केवल इसलिए होता है कि स्त्रियों को यह विश्वास कराया जाता है कि इस प्रकार का वेश्याजीवन नियमानुसार होने तथा अपने पतियों का प्रेम प्राप्त करने के लिए आवश्यक होने के कारण उचित और स्वाभाविक है।"

लेखक ने आगे चलकर असंयत और सतत संभोग के परिणाम दिखाये हैं, जिन्हें मैं निम्नलिखित रूप में रख रहा हूँ।

(अ) "स्त्रियों के अधिक......होने, असामयिक रूप से विकसित होने, रोगी, क्रोधी, अशान्त, बाल-बच्चों की ठीक से देखभाल करने में असमर्थ होने का कारण यही है।"

(ब) "गरीबों में इससे अनचाही संतानवृद्धि होती है।"

(स) "सम्पन्न लोगों में असंयत संभोग का परिणाम संततिनिरोध के कृत्रिम साधनों का प्रयोग और गर्भपात होता है।"

"यदि बड़े पैमाने पर लोगों में सन्ततिनिरोध या किसी भी रूप में कृत्रिम साधनों का प्रयोग स्त्रियों के लिए किया जाय, तो सारी जाति रोगग्रस्त, चरित्रभ्रष्ट और अन्त में वह नष्ट हो जायगी।"*

(द) "अधिक संभोग से सुन्दर जीविका उपार्जन के लिए आवश्यक शक्ति का नाश होता है।" "आजकल संयुक्तराष्ट्र में पुरुषों की अपेक्षा २० लाख स्त्रियाँ अधिक विधवा हैं। इनमें से युद्ध में मारे गये पुरुषों के कारण विधवाएँ कम हैं।"*

* लेखक के शब्द हैं।

(य) "आजकल प्रचलित विवाह के नियमों और रीतियों से स्त्री और पुरुष दोनों में निस्सारता की भावना जागती है।" "संसार में आज जो निर्धनता और बड़े बड़े शहरों में जो अशान्ति और कष्ट फैला हुआ है, वह इसलिए नहीं कि करने के लिए अच्छे काम नहीं हैं, बल्कि इसी लिए कि वर्तमान विवाह के नियमों के कारण, असंयत भोग विलास फैला हुआ है।"*

(फ) "मनुष्य जाति के भविष्य के विचार से सबसे भयानक गर्भ के दिनों का संभोग है।"

इसके बाद लेखक ने चीन और भारत के विषय में विचार प्रकट किये हैं जिनपर मैं कुछ नहीं कहना चाहता। यहाँ पहुँचकर पुस्तक का आधा समाप्त हो जाता है। दूसरे आधे में उन्होंने कुछ सुझाव दिये हैं। उनमें मुख्य यह कि पति और पत्नी अलग कमरों में और अनिवार्य रूप से अलग अलग बिस्तरों पर रहें और उन्हें तभी इकट्ठा होना चाहिये जब उनकी और विशेष रूप से स्त्री की इच्छा हो। विवाह के नियमों में जिन परिवर्तनों को सुझाया गया है, उन्हें मैं नहीं लिखना चाहता। संसारभर में विवाह के नियमों में जो एक लगभग सर्वनिष्ठ बात है, वह है एक ही कमरे में और एक ही बिस्तरे का सेवन और इसकी लेखक ने तीव्र आलोचना की है। और वह ठीक है। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारी बहुत कुछ वासना चाहे स्त्री हो या पुरुष, यह पार्थिक

* लेखक के शब्द हैं।

संताननिग्रह की एक समर्थक

गरीबों की सेवा में देने के लिए अपना शरीर लेकर आनेवाले उस गरीब के विपरीत श्रीमती हाऊ मार्टिन थीं। वे इङ्गलैंड की थीं और संताननिग्रह आन्दोलन की उत्साही कार्यकर्त्री थीं। वे अपना मत हिन्दुस्तान की गरीब जनता की सहायता के लिए इङ्गलैंड से लेकर आयी थीं और उनके आने का एक उद्देश्य यह भी था कि वे या तो गांधीजी को अपने विचारों का बनायें या स्वयं उनके विचारों की हो जायें। वे पहली बार हिन्दोस्तान में आयी थीं। गरीबों को उन्होंने पहले शायद ही देखा हो। इस लिए वे ब्रिटिश गरीब बस्तियों के बारे में अपने अनुभवों की जिक्र करती रहीं और 'बेचारी स्त्री' के पक्षसमर्थन में जोरदार दलीलें रक्खीं जिसे बली पुरुष की इच्छा के संमुख नत होना पड़ता है।

उनकी पहली ही बात पर महात्मा गांधी ने कहा, "कोई 'बेचारी स्त्री' तो है ही नहीं। 'बेचारी स्त्री' पुरुष की अपेक्षा कहीं सबल है और यदि आप हिन्दोस्तान के गाँवों में चलें, तो मैं आपको यह दिखा सकता हूँ। वह आपसे बतायेगी कि यदि वह इसे न पसन्द करे तो उसको बाध्य करनेवाला स्त्री या पुरुष कोई पैदा ही नहीं हुआ। यह मैं अपनी पत्नी के सम्बन्ध में हुए अपने अनुभव द्वारा कह रहा हूँ और मैं उदाहरण अकेला नहीं। यदि दब जाने की अपेक्षा मर जाने का संकल्प हो, तो कोई दानव भी एक स्त्री को जीतने के लिए विवश नहीं करता। यह तो एक पारस्परिक समझौते की

बात है। पुरुष और स्त्री दोनों पाशविक और दैवी शक्तियों का मिश्रण है। यदि हम पाशविक शक्ति का दमन कर सकें तो अच्छा ही है।''

''लेकिन यदि पुरुष अधिक सन्तान न पैदा करने के लिए दूसरी स्त्रियों के पास जाता है तो स्त्री के पास क्या चारा है?''

''सो अब आप अपना तर्क बदल रहे हैं। यदि आप अपनी बात अच्छी तरह न समझ लेंगे तो गलत निर्णय पर पहुँचना अनिवार्य है। बातों को कल्पना करके पुरुष को अपुरुष और स्त्री को अस्त्री बनाने की कोशिश न करें। अपने सिद्धान्त का आधार समझने में जब मैंने यह कहा था कि आपका संतानननिग्रह-प्रचार ही पर्याप्त भूमिका है, तो उस परिहास के पीछे एक गंभीर बात थी, क्योंकि मैं जानता हूँ कि बहुतसे पुरुष और स्त्री ऐसे हैं जो समझते हैं कि संताननिग्रह में ही उनकी मुक्ति है।''

श्रीमती हाऊ मार्टिन बोलीं, ''मैं इसमें संसार की मुक्ति नहीं देखती पर मेरा कहना यह है कि बिना किसी प्रकार की संताननिग्रह के मुक्ति नहीं हो सकती। हो सकता है कि आप इसके लिए एक मार्ग ग्रहण करें और मैं दूसरा। मैं आपके मार्ग का समर्थन करती हूँ, लेकिन हर अवसर पर नहीं। आप, ऐसा जान पड़ता है एक सुन्दर कार्य को निंद्यपूर्ण समझते हैं। दो पशु जब वे एक नवजीवन की सृष्टि करने जाते हैं तब वे दैविकता के अधिक निकट होते हैं। उस कार्य में कुछ बहुत ही सुन्दर है।''

''यहाँ भी अब फिर मुझमें है''—गांधीजी ने उत्तर दिया, ''मैं स्वीकार करता हूँ कि नवजीवन की उत्पत्ति दैविकता के अधिक निकट है। मैं

है। मैंने अभी तक जो कुछ किया है उसपर आप नजर डालें तो हिन्दुस्तान में आजादी प्राप्त करने के लिये किये जानेवाले प्रयत्नों की मदद की गरज से सन् १६१७ में जो पहला दल अमेरिका में संगठित हुआ था, उसमें मेरा भी नाम आपको मिलेगा।

एक और बात भी आपके लेख में ऐसी है जिसमें मैं समझती हूँ, आप गलती पर हैं। वह यह कि आप उसमें यह जाहिर करते मालूम पड़ते हैं कि हमारी बातचीत में गांधीजी ने (ऋतुकाल के बाद के कुछ दिनों को छोड़कर) ऐसे दिनों में समागम के उपाय को स्वीकार कर लिया है, जिनमें गर्भ रहने की सम्भावना प्राप्त नहीं होती। मेरे ख्याल में आप टाइप किये हुए वक्तव्य को देखें तो उसमें उनका यह कथन आपको मिलेगा, यह बात मुझे उतनी नहीं खलती जितनी कि दूसरी खलती है।" हालांकि मैंने और निश्चित बात कहने का आग्रह किया। लेकिन इससे आगे उन्होंने कुछ नहीं कहा। ऐसी हालत में आपने सार्वजनिक रूप से जो कथन उनका बताया है; मेरे ख्याल में, वह आपने ठीक नहीं किया, और अन्त में आपने प्रचारकों के "व्यापार" की जो बात लिखी है, मैं नहीं समझती कि उसमें गांधीजी आपसे सहमत होंगे। वह बात, और जिस भावना का वह सूचक है वह आप जैसे व्यक्ति के लायक नहीं है जिसने कि निःस्वार्थ भाव से जनसेवा का कार्य किया है।

संतति-निग्रह के कार्यकर्ता जिस बात को मानव स्वतंत्रता एवं प्रगति के लिए मनुष्य मात्र का मौलिक स्वत्व मानते हैं उसके लिए

के सभी दिनों में विषय-भोग में प्रवृत्त होने की छुट्टी मिल जाती है, वहाँ इस विशेष उपाय से किसी हद तक तो आत्मसंयम होता ही है।

"व्यापार" वाली बात मैं समझती हूँ, श्रीमती सैंगर को बहुत बुरी लगी है। लेकिन खुद श्रीमती सैंगर पर मैंने ऐसा कोई आरोप नहीं किया न मेरा ऐसा कोई इरादा ही था। क्योंकि मुझे मालूम है, उन्होंने अपने उद्देश्य के लिए बड़ी बहादुरी और निःस्वार्थ भाव से लड़ाई लड़ी है। मगर यह बात बिलकुल गलत भी नहीं है कि संतति-निग्रह के लिए आजकल जो प्रचार हो रहा है वह तथा संतति-निग्रह के प्रायः सभी उत्साही समर्थकों के यहाँ बिक्री के लिए इस सम्बन्ध का जो आकर्षक साहित्य या औज़ार आदि होते हैं, यह सब मिलाकर बहुत भद्दा है। इन सबसे तो उस उद्देश्य को हानि ही पहुँचती है, जिसके लिए कि श्रीमती सैंगर निःस्वार्थ भाव से इतना उद्योग कर रही हैं।

———

दूसरी तरह अपने विषयों को उत्तेजित करते हों और पहले से ही अपने मन पर काबू खो चुके हों। मिसेज सैंगर का यह बताया, अधिकांश डाक्टर यह मानते हैं कि ब्रह्मचर्य पालन से हानि होती है, बिल्कुल गलत है। मैं तो देखता हूँ कि यहाँ कई बड़े-बड़े डाक्टर अमेरिकन सोशल हाईजीन (सामाजिक आरोग्य शास्त्र) के विज्ञान-शास्त्री ब्रह्मचर्य-पालन को लाभदायक मानते हैं।

आप एक बड़ा नेक काम कर रहे हैं। मैं आपके जीवन-संग्राम के तमाम चढ़ाव-उतारों का बहुत रसपूर्वक अध्ययन करता रहा हूँ। आप जगत में उन इने-गिने व्यक्तियों में से हैं, जिन्होंने स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के प्रश्न पर इस तरह उच्च आध्यात्मिक दृष्टिबिन्दु से विचार किया है। मैं आपको यह जताना चाहता हूँ कि महासागर के इस पार भी आपके आदर्शों के साथ सहानुभूति रखनेवाला आपका एक साथी यहाँ पर है।

इस इस नेक काम को जारी रक्खें ताकि नवयुवक वर्ग सच्ची बात को जान लें, क्योंकि भविष्य उसी वर्ग के हाथों में है।

अपने विद्यार्थियों के साथ अपने एक संवाद में से मैं उदाहरण यहाँ देना चाहता हूँ—निर्माण करो, हमेशा निर्माण करो। निर्माण प्रवृत्ति में से तुम्हें श्रेय मिलेगा, उन्नति मिलेगी, उत्साह मिलेगा, उल्लास मिलेगा। पर अगर तुम अपनी निर्माणशक्ति को आज विषयतृप्ति का साधन बना लोगे तो तुम अपनी रक्षा-शक्ति पर अत्याचार करोगे और तुम्हारे आध्यात्मिक बल का नाश हो जायगा। रचना प्रवृत्ति—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक का नाम जीवन है, यही आनन्द

अरण्य-रोदन

"अभी हाल ही में संतति-निग्रह की प्रचारिका मिसेज सेंगर के साथ आपकी मुलाकात पर एक समालोचना मैंने पढ़ी है। इसका मुझपर इतना गहरा असर हुआ है कि आपके दृष्टिबिन्दु पर संतोष और पसन्दगी जाहिर करने के लिए मैं आपको यह पत्र लिखने बैठा हूँ। आपकी हिम्मत के लिए ईश्वर सदा आपका कल्याण करें।

पिछले तीस साल से मैं लड़कों के पढ़ाने का काम करता हूँ। मैंने हमेशा उन्हें देह-दमन और निःस्वार्थ जीवन बिताने के लिए तालीम दी है। जब मिसेज सेंगर हमारे आस-पास प्रचार-कार्य कर रही थीं, तब हाई स्कूल के लड़के लड़कियाँ उनकी ही हुई सूचनाओं का उपयोग करने लग गये थे। और परिणाम का डर दूर हो जाने से उनमें खूब व्यभिचार चल पड़ा था। अगर मिसेज सेंगर की शिक्षा कहीं व्यापक हो गयी तो सारा समाज विषय-सेवन के पीछे पड़ जायगा और शुद्ध प्रेम का दुनियाँ से नामो-निशान तक मिट जायगा। मैं मानता हूँ कि जनता को उच्च आदर्शों की शिक्षा देने में सदियाँ लग जायँगी। पर यह काम शुरू करने के लिए अनुकूल से अनुकूल समय अभी है। मुझे डर है कि मिसेज सेंगर विषय को ही प्रेम समझ बैठी हैं। पर यह भूल है, क्योंकि प्रेम एक आध्यात्मिक वस्तु है, विषय-सेवन से इसकी उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती।

डॉ० एलेक्सिस केरल भी आपके साथ इस बात में सहमत हैं कि संयम कभी हानिकारक सिद्ध नहीं होता, सिवाय उन लोगों के कि जो

है। अगर तुम प्रजोत्पत्ति के हेतु के बिना या संतति का निरोध करके विषय-सेवन द्वारा सिर्फ इन्द्रिय-सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करोगे, तो तुम प्रकृति के नियम का भंग और अपनी आध्यात्मिक शक्तियों का हनन करोगे। इसका परिणाम यह होगा, कि अनिवार्य विषयाग्नि धधक उठेगी और आखिर निराशा तथा असफलता में अन्त होगा। इससे तो हम कभी उन उच्च गुणों का विकास नहीं कर पायेंगे, जिनके बल पर हम उस नवीन मानव समाज की रचना कर सकें, जिसमें कि दिव्यात्मा स्त्री पुरुष हों।

मैं जानता हूँ कि यह सब पूर्वकाल के नबियों के "अरण्य-रोदन" जैसी बात है, पर मेरा पक्का विश्वास है कि यही सच्चा रास्ता है और मुझसे अधिक कुछ चाहे न भी बन पड़े पर मैं कम से कम उँगली दिखाकर तो अपना समाधान कर लूँ।

संतति-नियमन के कृत्रिम साधनों का निषेध करनेवाले जो पत्र मुझे कभी कभी अमेरिका से मिलते हैं, उन्हीं में से यह भी एक है। पर सुदूर पश्चिम से हिन्दुस्तान में जो सामाजिक साहित्य आता रहता है, उसमें तो पढ़नेवाले के दिल पर बिल्कुल बुरा असर पड़ता है मानो अमेरिका में तो सिवा बेरहूदों के कोई भी इन आधुनिक साधनों का

मामले में व्यक्तिगत अनुभव वाली दलील में तो उतनी ही शक्ति जितनी कि एक शराबी के किसी कार्य में होती है। और सहानुभूति वाली दलील एक धोखे की टट्टी है, जिसके अन्दर पैर भी रखना खतरनाक है। अनचाहे बच्चों के तथा मातृत्व के कष्ट तो कल्याणकारी प्रकृति द्वारा नियोजित सजायें और हिदायतें हैं। समय और इन्द्रिय-नियमन के कानून की जो परवा नहीं करेगा, वह तो एक तरह से अपनी खुदकुशी ही कर लेगा। यह जीवन तो एक परीक्षा है। अगर हम इन्द्रियों का नियमन नहीं कर सकते, तो हम असफलता को न्यौता देते हैं, कायरों की तरह हम युद्ध से मुँह मोड़कर जीवन के एकमात्र आनन्द से अपने आपको वंचित करते हैं।

का भंग नहीं करते। लेकिन जिस नये रूप में—अब मैं स्मृति की बात को लेता हूँ, वह मेरे लिए मानो एक इलहाम है। स्मृतियों का कहना है कि जो विवाहित स्त्री-पुरुष इस आदेश का दृढ़ता के साथ पालन करें, वे वैसे ही ब्रह्मचारी हैं जैसे अविवाहित रहकर सदाचारी जीवन व्यतीत करनेवाले होते हैं। उसे अब मैं इतनी अच्छी तरह समझ गया हूँ जैसे पहले कभी नहीं जानता था।

इस नये रूप में, अपनी काम-वासना को तृप्त नहीं करना, बल्कि सन्तानोत्पत्ति ही सहवास का एकमात्र उद्देश्य है। साधारण काम-पूर्तियाँ, विवाह की इस दृष्टि से भोग ही माना जायगा। जिस आनन्द को हम अभीतक निर्दोष और वैध मानते आये हैं, उसके लिए ऐसे शब्द का प्रयोग कठोर तो मालूम होगा, लेकिन प्रचलित प्रथा की बात मैं नहीं कर रहा हूँ बल्कि उस विवाह-विज्ञान को ले रहा हूँ जिसे हिंदू ऋषियों ने बताया है। यह हो सकता है कि उन्होंने इसे ठीक ढङ्ग से न रक्खा हो; या वह बिल्कुल गलत ही हो, लेकिन मुझ जैसे आदमी के लिए तो जो स्मृतियों की कई बातों को अनुभव के आधारभूत मानता है, उनके अर्थ को पूरी तरह स्वीकार किये बग़ैर कोई चारा ही नहीं है। कुछ पुरानी बातों को उनके पूरे अर्थों में ग्रहण करके प्रयोग में लाने के अलावा और कोई ऐसा तरीका मैं नहीं जानता जिससे उनकी सचाई का पता लगाया जा सके, फिर वह जाँच कितनी ही कड़ी क्यों न प्रतीत हो और उससे निकलनेवाले निष्कर्ष कितने ही कठोर क्यों न लगें। ऊपर मैंने जो कुछ कहा है उसको देखते हुए कृत्रिम साधनों या ऐसे दूसरे

है उससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता। लेकिन अगर मनुष्य जाति को अपनी किस्मत बनानी है, तो इसके सिवाय इसकी पूर्ति का कोई उपाय ही नहीं है, क्योंकि यह मेरा आन्तरिक विश्वास है कि कृत्रिम साधनों से संतति-निग्रह की बात सबने मंजूर कर ली तो मनुष्य-जाति का बड़ा भारी नैतिक पतन होगा। कृत्रिम संतति-निग्रह के समर्थक इसके विरुद्ध प्राय: जो प्रमाण पेश करते हैं उनके बावजूद मैं यह कहता हूँ।

मेरा विश्वास है कि मुझमें अन्धविश्वास कोई नहीं है। मैं यह नहीं मानता कि कोई बात इसलिये सत्य है, क्योंकि वह प्राचीन है, न मैं यही मानता हूँ कि चूँकि वह प्राचीन है इसलिए उसे संदिग्ध समझा जाय। जीवन के आधारभूत कई ऐसी बातें हैं, जिन्हें हम यह समझकर यों ही नहीं छोड़ सकते कि उनपर अमल करना मुश्किल है।

इसमें शक नहीं कि आत्मसंयम के द्वारा संतति-निग्रह है कठिन, लेकिन अभीतक ऐसा कोई नजर नहीं आया जिसने संजीदगी के साथ उसकी उपयोगिता में संदेह किया हो या यह न माना हो कि कृत्रिम साधनों की बनिस्बत यह ऊंचे दर्जे का है।

मैं समझता हूँ जब हम सहवास को दृढ़ता से मर्यादित रखने के शास्त्रों के आदेश को पूर्णत: स्वीकार कर लें और उसको ही सबसे बड़े आनन्द का साधन न मानें तो यह अपेक्षाकृत आसान भी हो जायगा। जननेन्द्रियों का काम तो सिर्फ यही है कि विवाहित दम्पति के द्वारा यथासम्भव सर्वोत्तम सन्तानोत्पत्ति करें। और यह तभी हो सकता है

जिससे इस पथ पर चलनेवालों के लिए उच्च नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी वंचित कर देता है, जिससे इस पथ पर चलनेवालों के लिए उच्च नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से बुद्धिपूर्वक किसी बात का निर्णय करना असम्भव हो जाता है। इस संबंध में हिन्दुस्तान ने अगर पश्चिम का अनुकरण किया, तो निश्चय ही वह अपने दो अत्यन्त अमूल्य और सुन्दर रत्नों को खो देगा—एक तो छोटे बच्चों के प्रति प्रेम और दूसरा माता-पिता के प्रति श्रद्धा। अमेरिका ने इन दोनों को गँवा दिया है और इनका उसे कुछ पता भी नहीं। क्या आप ब्रह्मचर्य के अर्थ का स्पष्टीकरण कर सकते हैं? मुझसे इसके बारे में पूछा गया है। हालां कि मेरे मन में इसकी कुछ कल्पना तो है, लेकिन वह इतनी निश्चित नहीं है कि मैं दूसरों को समझाने का प्रयत्न करूँ।"

पाठक और पाठिकाएँ इस साक्षी का जो कुछ मूल्य आँकें, वह आँक सकते हैं। मगर मैं कहता हूँ कि सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनों का प्रयोग करने के विरुद्ध ऐसी साक्षी उन लोगों की साक्षी से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है, जो इनके प्रयोग से फायदा उठाने का दावा करते हैं। इसका कारण स्पष्ट है। इससे बच्चों की उत्पत्ति रुकती है, इस रूप में इसके फायदे से कोई इन्कार नहीं करता। कहा सिर्फ यह जाता है कि इसके प्रयोग से जो नैतिक हानि होती है, वह बेहिसाब है। कुमारी सिम्पसन ने हमें ऐसी हानि का भाव बताया है।

अब रही ब्रह्मचर्य के अर्थ की बात, सो उसका मूलार्थ इस प्रकार बताया जा सकता है :—

कृत्रिम साधनों से सन्तति निग्रह

एक सज्जन लिखते हैं :—

"हाल में हरिजन में श्रीमती सैंगर और महात्मा गांधी की मुलाकात का जो विवरण प्रकाशित हुआ है, उसके बारे में मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

इस बातचीत में जिस खास बात की ओर ध्यान नहीं दिया गया मालूम पड़ता, वह यह है कि मनुष्य अन्ततोगत्वा कलाकार और उत्पादक है। कम से कम आवश्यकताओं की पूर्ति पर ही वह संतोष नहीं करता बल्कि सुन्दरता, रंग बिरंगापन और आकर्षण भी उसके लिये आवश्यक होता है। मुहम्मद साहब ने कहा है कि "अगर तेरे पास एक ही पैसा हो, तो उससे रोटी खरीद ले, लेकिन अगर दो हों, तो एक से रोटी खरीद और एक से फूल।" इसमें एक महान् मनोवैज्ञानिक सत्य निहित है—वह यह कि मनुष्य स्वभावतः कलाकार है। इसीलिये हम उसे ऐसे कामों के लिये भी प्रयत्नशील पाते हैं, जो महज उसके शरीर धारण के लिये आवश्यक नहीं। उसने तो अपनी प्रत्येक आवश्यकता को कला का रूप दे रखा है और उन कलाओं की खातिर मनों खून बहाया है। मनुष्य की उत्पादक बुद्धि नयी नयी कठिनाइयों और समस्याओं को पैदा करके उनका तेज निकालने के लिये उसे प्रेरित करती रहती है। रस्किन, टॉलस्टाय, थोरो और गांधी उसे जैसा "सरल सादा" बनाना चाहते हैं, वह बन नहीं सकता। युद्ध भी उसके लिये एक आव-

नोत्पत्ति की तरह इच्छा से प्रेरित होकर ही मैथुन करना इतनी प्राकृतिक, इतनी मामूली हिसाब-किताब की सी बात है कि हमारे फिलासफर के कथनानुसार वह उसको कला प्रेमी प्रकृति को अपील नहीं कर सकता। इसलिये वह तो स्त्री-पुरुष के प्रेम को एक बिल्कुल दूसरे पहलू से देखता है। ऐसे पहलू से जिसका सन्तान-वृद्धि से कोई सम्बन्ध नहीं। यह बात हेवलाक एलिस और मेरी स्टोप्स जैसे आप्त पुरुषों के कथनों से उत्पन्न होती है। पर वह शारीरिक सम्भोग के बिना अपूर्ण रह जाती है। यह उस समय तक रहेगा जब तक हम इस अंश को केवल आत्मा में पूरा नहीं कर सकते और उसके लिये शरीर-यंत्र की आवश्यकता समझते हैं। ऐसे सहवास के परिणाम का सामना बिलकुल दूसरं समस्या है। यहीं संतान निग्रह के आन्दोलन का काम आ जाता है पर यह काम अगर स्वयं आत्मा की ही पुनः व्यवस्था पर छोड़ दिया जाय और बाह्य-अनुशासन द्वारा आत्मसंयम के माने इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है—तो हमें यह आशा नहीं होती कि उससे जिन उद्देश्यों की पूर्ति होनी चाहिये उन सबको वह सिद्ध कर सकेगा। न उससे बिना सुदृढ़ मनोवैज्ञानिक आधार के सतति निग्रह ही हो सकता है।

अपनी बात को समाप्त करने से पहले मैं यह और कहूंगा कि आत्म-सयम या ब्रह्मचर्य का महत्व मैं किसी प्रकार कम नहीं करना चाहता। वैषयिक निग्रह को पूर्णता पर ले जाने वाली कला के रूप में मैं हमेशा उसकी सराहना करूंगा। लेकिन जैसे अन्य कलाओं की सम्पूर्णता —→ जीवन में (और नीत्शे के अनुसार) हमारे सा

देखने की कोशिश करने पर भी मुझे यह क्यों इतनी खलती है!

लेकिन मेरे सन्तोष की कोई ऐसी बात सिद्ध नहीं होती जिससे मुझे इसका विश्वास हो जाय कि विवाह जीवन में मैथुन स्वयं कोई अच्छाई है और उसे करने वालों को उससे कोई लाभ होता है। हाँ, अपने खुद के तथा दूसरे अनेक अपने मित्रों के अनुभव पर से इससे विपरीत बात मैं जरूर कह सकता हूँ। हममें से किसी ने भी मैथुन द्वारा कोई मानसिक आध्यात्मिक या शारीरिक उन्नति की हो, यह मैं नहीं जानता। क्षणिक उत्तेजन और सन्तोष तो उससे अवश्य मिला, लेकिन इसके बाद थकावट भी जरूर हुई। और जैसे ही उस थकावट का असर मिटा नहीं कि मैथुन इच्छा भी तुरन्त ही जाग्रत हो उठी। हालांकि मैं सदा से जागरूक रहा हूँ, फिर भी अच्छी तरह मुझे याद है कि इस विकार से मेरे कामों में बड़ी बाधा पड़ी है। इस कमजोरी को समझकर ही मैंने आत्मसंयम का रास्ता पकड़ा और इसमें सन्देह नहीं कि तुलनात्मक रूप से काफी लम्बे-लम्बे समय तक मैं जो बीमारी से बचा रहता हूँ और शारीरिक एवं मानसिक रूप से जो इतना अधिक और विविध प्रकार का काम कर सकता हूँ, कि जिसे देखनेवालों ने अद्भुत बताया है, उसका कारण मेरा यह आत्मसंयम या ब्रह्मचर्य पालन ही है।

मुझे भय है कि उक्त सज्जन ने जो कुछ पेश किया, गलत अर्थ ... है। मनुष्य कलाकार और उत्पादक है इसमें तो कोई शक नहीं। ... और रंग-बिरंगापन उसे चाहिये हों। लेकिन मनुष्य की कला- ... उत्पादक प्रवृत्तियों ने अपने सर्वोत्तम रूप में उसे यही सिखाया

हूँ अब इस दलील को और आगे बढ़ाने की कोई जरूरत नहीं।

उक्त सज्जन का यह कहना ठीक ही है कि मनुष्य आवश्यकता से प्रेरित होकर कला की रचना करता है। इस प्रकार आवश्यकता न केवल आविष्कार की जननी है, बल्कि कला की भी जननी है। इसलिए जि कला का आधार आवश्यकता नहीं है, उससे हमें सावधान रहना चाहिये

साथ ही अपनी हरेक इच्छा को हमें आवश्यकता का नाम नहीं दे चाहिये। मनुष्य की स्थिति तो एक प्रकार से प्रयोगात्मक है। इस आसुरी और दैविक दोनों प्रकार की शक्तियाँ अपने खेल खेलती हैं। कि भी समय वह प्रलोभन का शिकार हो सकता है। अतः प्रलोभनों लड़ते हुए उनका शिकार न बनने के रूप में उसे अपना पुरुषार्थ सि करना चाहिये, जो अपने माने हुए बाहरी दुश्मनों से तो लड़ता है कि अपने अन्दर के विविध शत्रुओं के सामने अंगुली तक नहीं उठा सकता, कि उन्हें अपने मित्र समझने की गलती करता है, व योद्धा नहीं है। उसे यह तो करना ही चाहिए—लेकिन उक्त सज्जन क यह कहना गलत है कि उसे भी उसने एक महान् कला के ही रूप में परिणत कर दिया है। क्योंकि युद्ध की कला को हमने अभी शायद ही सीखा हो, हमने तो झूठे युद्ध को उसी तरह सच्चा मान लिया है जैसे हमारे पूर्व पुरुष ने बलिदान का गलत अर्थ लगा कर बजाय अपनी दुर्भावनाओं के बेचारे निर्दोष पशुओं का बलिदान शुरू कर दिया—अहिंसा की गंगा में आज जो युद्ध हो रहा है, उसमें निश्चय ही न तो कोई सौंदर्य है और न कोई कला। उक्त सज्जन ने उदाहरण के लिए जो नाम

सुधारक बहनों से

एक बहिन से गम्भीरता पूर्वक मेरी जो बातचीत हुई उससे मुझे होता है कि कृत्रिम संतति निरोध सम्बन्धी मेरी स्थिति को अभी तक लो ने काफी अच्छी तरह नहीं समझा। कृत्रिम संतति-निरोध के साधन का जो विरोध करता हूँ वह इस कारण नहीं कि वे हमारे यहाँ पश्चिम आये हैं। कुछ पश्चिमी चीजें तो हमारे लिये वैसी ही उपयोगी हैं कि वे पश्चिम के लिये हैं और कृतज्ञता के साथ मैं उनका प्रयोग करता हूँ। अतएव कृत्रिम सन्तति निरोध के साधनों का मेरा विरोध केवल उनके गुणदोष की दृष्टि से ही है।

मैं यह मानता हूँ कि कृत्रिम सन्तति निग्रह के साधनों का प्रति दन करने वालों में जो सबसे अधिक बुद्धिमान हैं वे उन्हें उन कि तक ही मर्यादित रखना चाहते हैं जो सन्तानोत्पत्ति में बचते हुए अप और अपने पतियों की विषय वासना तृप्त करना चाहते हैं। लेकि मेरे ख्याल में, मानव-प्राणियों में यह इच्छा अस्वाभाविक है और इस तृप्त करना मानव कुटुम्ब की आध्यात्मिक प्रगति के लिए घातक है इसके खिलाफ अन्य बातों के साथ अक्सर पेन के लार्ड डासन की राय पेश की जाती है।

"विषय सम्बन्धी प्रेम संसार की एक प्रचण्ड और प्रधान शक्ति है हमारे अन्दर यह भावना इतनी तीव्र, मौलिक और बलवती होती है कि हमें इसके प्रभाव को तथ्य रूप में स्वीकार करना ही होगा। आप इस

मन नहीं कर सकते, आप चाहें तो इसे अच्छे रूप में परिणत कर सकते हैं, किन्तु इसके प्रवाह को रोक नहीं सकते। और यदि इसके प्रवाह या स्रोत अपर्याप्त या जरूरत से ज्यादा से ज्यादा प्रतिबन्ध युक्त हुआ तो यह अनियमित स्रोतों से निकल पड़ेगा। आत्म संयम में हानि की सम्भावना रहती है और यदि किसी जाति में विवाह होने में कठिनाई होती हो या बहुत देर में जाकर विवाह होते हों तो उसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि अनुचित सम्बन्धों की वृद्धि हो जायगी। इस बात को तो सभी मानते हैं कि शारीरिक सहवास तभी होना चाहिये जब मन आत्मा भी उनके अनुकूल हों। और इस बात पर भी सब सहमत हैं कि सन्तानोत्पत्ति ही उसका प्रधान उद्देश्य है। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि बारम्बार हम जो सम्भोग करते हैं, वह हमारे प्रेम का शारीरिक प्रदर्शन ही होता है, जिसमें सन्तानोत्पत्ति का कोई विचार या इरादा नहीं। तो क्या हम सब गलती ही करते आ रहे हैं? या यह बात है कि धर्म का हमारे वास्तविक जीवन से आवश्यक सम्बन्ध नहीं है, जिसके कारण उसके और सर्व साधारण के बीच खाई पड़ गई है? जब तक किसी शासक या सचा का, और धर्माधिकारियों का — मैं इन्हीं में शुमार करता हूँ, इन नौजवानों के प्रति अधिक स्पष्ट, [illegible] पूर्ण और वास्तविकता के अधिक अनुकूल न होगा तब तक उनकी वफादारी कभी प्राप्त नहीं होगी।"

फिर सन्तानोत्पत्ति के अलावा भी विषय प्रेम का अपना उद्देश्य है। विवाहित जीवन में स्वस्थ और सुखी रहने के लिए यह अनिवार्य

है। वैषयिक सहवास यदि परमेश्वर की देन है तो उसके उपयोग का ज्ञान भी प्राप्त करने के लायक है। अपने क्षेत्र में यह इस तरह पैदा किया जाना चाहिए जिससे न केवल एक बल्कि सम्भोग करने वाले स्त्री पुरुष दोनों की शारीरिक तृप्ति हो। इस तरह एक दूसरे को जो पारस्परिक आनन्द प्राप्त होगा उससे उन दोनों में एक स्थायी बन्धन स्थापित होगा उससे उनका विवाह सम्बन्ध स्थिर होगा, आध्यात्मिक विषय से उतने विवाह असफल नहीं होते जितने की अपर्याप्त और बेढंगे वैषयिक प्रेम से होते हैं। काम-वासना अच्छी चीज है, ऐसे अधिकांश व्यक्ति जो किसी भी रूप में अच्छे हैं, काम-भावना रखने में समर्थ हैं। काम भावना विहीन विषय प्रेम तो बिल्कुल बेजान चीज है। दूसरी ओर ऐयाशी पेटूपन के सिवाय एक शारीरिक अति है। अब चूँकि "प्रार्थना पुस्तक" के परिवर्धन पर विचार हो रहा है, मैं यह बड़े आदर के साथ सुझाना चाहता हूँ कि उसके विवाह में यह और जोड़ दिया जाय कि—"स्त्री और पुरुष के पारस्परिक प्रेम की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति ही विवाह का उद्देश्य है।"

"अब मैं यह सब छोड़कर सन्तति-निग्रह के सब से जरूरी प्रश्न पर आता हूँ। सन्तति निग्रह स्थायी होने के लिए आया है। वह तो अब जम चुका है—और अच्छा हो या बुरा हो—उसे हमको स्वीकार करना ही होगा। इन्कार करने से उसका अन्त नहीं होगा। जिन कारणों से प्रेरित होकर अभिभावक लोग सन्तति निग्रह करना चाहते हैं, उनमें कभी कभी तो स्वार्थ होता है। लेकिन वे बहुधा आदरणीय और उचित

भी होते हैं। विवाह करके अपनी सन्तान को जीवन मार्ग के योग्य बनाना, मर्यादित आय, जीवन निर्वाह का मानी विविध करों का बोझ— ये सब इसके लिये जिम्मेदार कारण हैं। और फिर शिक्षित वर्ग के अन्दर स्त्रियाँ अपने पतियों के काम धन्धों तथा सार्वजनिक जीवन में भी भाग लेने की इच्छा करती हैं। यदि वे बार बार गर्भवती होती रहें तो इच्छाएँ पूर्ण नहीं हो सकतीं। यदि सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनों का सहारा न लिया जाय तो देर में विवाह करने का तरीका करना पड़ेगा, लेकिन ऐसा होने पर उसके साथ अनुचित (गुप्त) रूप में अपनी विषयेच्छा तृप्त करने के विविध दुष्परिणाम सामने आयेंगे। एक ओर तो हम ऐसे अनुचित सम्बन्धों की बुराई करें और दूसरी ओर विवाह के मार्ग में बाधा उपस्थित करें, तो उससे कोई लाभ न होगा। बहुत से लोग कहते हैं सम्भव है कि सन्तति निग्रह आवश्यक हो परन्तु एकमात्र जिस उपाय से सन्तति निग्रह करना ठीक हो सकता है वह तो स्वेच्छा-पूर्ण संयम ही है। लेकिन ऐसा संयम या तो व्यर्थ होगा या यदि कोई उसका असर पड़ा तो वह अव्यावहारिक और स्वार्थ व सुख के लिए नकर होगा। परिवार के लिए, मान लो, हम चार बच्चों की मर्यादा लें तो यह विवाहित स्त्री-पुरुष के लिए एक तरह का संयम ही होगा, देर देर में सन्तानोत्पत्ति होने के कारण ब्रह्मचर्य के समान ही माना गा और जब हम इस बात पर ध्यान दें कि आर्थिक कठिनाई के ण विवाहित जीवन के आरम्भिक वर्षों में बहुत कठोर संयम करना गा। जब कि विषयेच्छा बहुत प्रबल रहती है तो मैं कहता हूँ कि

की तरह नये संसार की आवश्यकताओं और आधुनिक ज्ञान के प्रकाश में ही इस प्रश्न पर विचार करेंगे।"

यह कितने बड़े डाक्टर हैं इससे इनकार नहीं किया जा सकता लेकिन डाक्टर के रूप में उनका जो बड़प्पन है। उसके लिए काफी आदर का भाव रखते हुए भी मैं इस पर सन्देह करने का साहस करता हूं कि उनका यह कथन कहां तक ठीक है। खासकर उस हालत में जब कि यह उन स्त्री पुरुषों के अनुभव के विपरीत है जिन्होंने आत्म संयम का जीवन बिताया है, किन्तु उससे उनकी नैतिक या शारीरिक हानि नहीं हुई। वस्तुतः बात यह है कि डाक्टर लोग आम तौर पर उन्हीं लोगों के सम्पर्क में आते हैं जो स्वास्थ्य के नियमों की अवहेलना करके कोई न कोई बीमारी मोल ले लेते हैं। इसलिए बीमारों को अच्छा होने के लिए क्या करना चाहिये। यह तो वे अक्सर सफलता के साथ बता देते हैं लेकिन यह बात वे हमेशा नहीं जानते कि स्वस्थ स्त्री पुरुष किसी खास दिशा में क्या कर सकते हैं। अतएव विवाहित स्त्री पुरुषों पर संयम की जो असर पड़ने की बात लार्ड डासन कहते हैं, उसे अत्यन्त सावधानी के साथ ग्रहण करना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि विवाहित स्त्री-पुरुष अपनी विषय तृप्ति को स्वतः कोई बुराई नहीं मानते। उनकी प्रवृत्ति उसे वैध मानने की ही है, लेकिन आधुनिक युग में तो कोई बात स्वयं सिद्ध नहीं मानी जाती और हरक बात की बारीकी से छानबीन की जाती है। अतः यह मानना भारी गलती होगी कि चूंकि अब तक हम विवाहित जीवन में विषय भोग करते रहे हैं इसलिए ऐसा करना ठीक ही है। या स्वास्थ्य के लिए उसकी आवश्यकता

है। बहुत सी पुरानी प्रथाओं को हम छोड़ चुके हैं और उसके परिणाम अच्छे ही हुए हैं। तब इस खास प्रथा को ही उन स्त्री पुरुषों के अनुभव की कसौटी पर क्यों न कसा जाय, जो विवाहित होते हुए भी एक दूसरे की सहमति से संयम का जीवन व्यतीत कर रहे हैं और उससे नैतिक तथा शारीरिक दोनों तरह का लाभ उठा रहे हैं।

लेकिन मैं तो इसके अलावा विशेष आधार पर भी भारत में संतति निग्रह के कृत्रिम साधनों का विरोधी हूँ। भारत में नवयुवक यह नहीं जानते कि विषय दमन क्या है। इसमें उनका कोई दोष नहीं है। छोटी उम्र में ही उनका विवाह हो जाता है, यह यहाँ की प्रथा है और विवाहित जीवन में संयम रखने को उनसे कोई नहीं कहता। माता-पिता तो अपने नाती पोते देखने के उत्सुक रहते हैं। बेचारी बाल-पत्नियों से उसके आस पास वाले यही आशा करते हैं कि जितनी जल्दी हो वे पुत्रवती हो जायँ। ऐसे वातावरण में सन्तति निरोध के कृत्रिम साधनों से तो कठिनाई और बढ़ेगी ही। जिन बेचारी लड़कियों से यह आशा की जाती है कि वे अपने पतियों की इच्छा पूर्ति करेंगी, उन्हें अब यह और सिखाया जायगा कि वे बच्चे पैदा होने की इच्छा तो न करें पर विषय-भोग किये जायँ; इसी में उनका भला है। और इस दुहरे उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्हें सन्तति निरोध के कृत्रिम साधनों का सहारा लेना होगा।

मैं तो विवाहित बहनों के लिए इस शिक्षा को बहुत घातक समझता हूँ। मैं यह नहीं मानता कि पुरुष की ही तरह स्त्री की काम-वासना

को असम्भव होता है। मेरी समझ में पुरुष की अपेक्षा स्त्री के लिए आत्म-संयम करना ज्यादा आसान है। हमारे देश में जरूरत इस इसी बात की है कि स्त्री अपने पति तक से 'ना' कह सके ऐसी सुशिक्षा स्त्रियों को मिलनी चाहिए।

स्त्रियों को हमें यह सिखा देना चाहिए कि वे अपने पतियों के हाथ की कठपुतली या भोगमात्र न बन जायँ। यह उनके कर्तव्य का अङ्ग नहीं है। और कर्तव्य की ही तरह उनके अधिकार भी हैं। जो लोग सीता को राम की आज्ञानुवर्तिनी दासी के रूप में ही देखते हैं वे इस बात को महसूस नहीं करते कि उनमें स्वाधीनता की कितनी भावना थी और राम हरेक बात में उनका कितना ख्याल रखते थे। भारत की स्त्रियों से सन्तति-निरोध के कृत्रिम साधन अख्तियार करने के लिए कहना तो बिल्कुल उल्टी बात है। सबसे पहले तो उन्हें मानसिक दासता से मुक्त करना चाहिए, उन्हें अपने शरीर की पवित्रता की शिक्षा दे कर राष्ट्र और मानवता की सेवा में कितना गौरव है इस बात की शिक्षा देना चाहिए। यह सोच लेना ठीक नहीं है कि भारत की स्त्रियों का तो उद्धार ही नहीं हो सकता और इसलिए सन्तानोत्पत्ति में रुकावट डालकर अपने गिरे हुए स्वास्थ्य की रक्षा के लिए उन्हें सिर्फ सन्तति निग्रह के कृत्रिम साधन ही सिखा देने चाहिए।

जो बहिन सचमुच उन स्त्रियों के दुःख से दुःखी हैं उन्हें इच्छा हो या न हो फिर भी बच्चों के झमेले में पड़ना पड़ता है, उन्हें अधीर नहीं होना चाहिए। वे जो कुछ चाहती हैं, वह एक दम तो कृत्रिम सन्तति

निरोध के साधनों के पक्ष में तो आन्दोलन से भी नहीं होने वाला है। हरेक उपाय के लिए सवाल तो शिक्षा का ही है। इस लिए मेरा कहना यही है कि वह हो अच्छे ढङ्ग की।

आत्म संयम के विषय में और

आपने हाल ही मे आत्म-संयम पर जो लेख लिखा था उसने लोगों को हिला दिया है। जो लोग आपके विचारों के पक्ष में हैं उनके लिए थोड़े समय के लिए भी आत्मसंयम करवाना कठिन हो गया है। उनका कहना है कि आप अपने अनुभव का प्रयोग सम्पूर्ण मनुष्य-समाज के लिए कर रहे हैं, और आपको मानते हैं, कि आप पूर्ण ब्रह्मचारी हैं क्योंकि आप पाशविक वासना से परे नहीं। और चूँकि आप विवाहित लोगों के लिये सन्तानों की सीमित संख्या चाहते हैं, सन्तति निरोध के कृत्रिम साधनों के प्रयोग के अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय विस्तृत जन समाज के लिये नहीं दीख पड़ता।

मैंने अपनी सीमाएँ स्वीकार की हैं। आत्मसंयम बनाम सन्तति निरोध के कृत्रिम साधन के सम्बन्ध में मेरी सीमाएँ ही मेरे गुण हैं।

मेरी सीमाओं से पता चलता है कि मैं संसार के अन्य लोगों की भाँति पृथ्वी पर का ही मनुष्य हूँ और मैं किसी दैवी वरदान का बहाना नहीं कर सकता। मेरा आत्मसंयम से उद्देश्य बिलकुल साधारण था। मनुष्य समाज या देश की सेवा के लिये सन्तानों की संख्या सीमित

करने की इच्छा अपने देश या मनुष्य समाज की सेवा करने की अपेक्षा अधिक सन्तानों के पालन की असमर्थता होनी चाहिये। वर्तमान दृष्टिकोण से, मेरे ३५ वर्ष के सफल प्रयत्नों के होते हुए भी मेरे मित्र या गुरु अब भी सतर्कता चाहते हैं इससे बहुत कुछ प्रकट होता है कि मैं साधारण मनुष्य हूं। अतएव मैं समझता हूँ जो कुछ मैं कर सकता हूँ, वह कोई भी प्रयत्नशील पुरुष कर सकता है।

मैं सन्तति-निग्रह के पक्ष में प्रचार करने वालों का इस बात का विरोध करता हूं कि वे यह क्यों मान लेते हैं कि वह साधारण आत्म-संयम नहीं करा सकता। कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि यदि वे ऐसा कर सकें तो उसे भी करना चाहिये। उनसे मैं पूर्ण नम्रता और विश्वास के साथ कहता हूं कि वे अपने विषय के किसी भी बड़े काल का क्या आत्मसंयम के अनुभव बिना ऐसा कहते हैं। उन्हें मनुष्य की आत्मा को सीमित करने का कोई अधिकार नहीं। ऐसा मामलों के लिए मेरे जैसे मनुष्य का उदाहरण यदि विश्वसनीय है तो अधिक [illegible] हां नहीं बल्कि अन्तिम है। यदि गम्भीरता-पूर्वक देखा जाय तो चूंकि मैं महात्मा के रूप में प्रचलित हूं अतः मेरा उदाहरण निरर्थक मानना ठीक नहीं।

इससे भी अधिक जोरदार एक बहन का तर्क है—"इस सन्तति निग्रह के कृत्रिम साधनों का प्रचार करने वाले अभी हाल में ही मानो [illegible] हैं। पर आत्मसंयमी लोग लगभग हजारों वर्षों से इस ढंग पर प्रचार करते रहे; पर उसका कौन [illegible] किया जा सका है? क्या

ने आत्मसंयम सीख लिया? आपने भार से दबे हुए परिवारों का दुःख हटाने के लिये क्या किया? क्या हमने पागल मानुष की चीत्कार सुनी है? आइये, अभी तक आपके लिए क्षेत्र खाली है। हमें आपके आत्म-संयम के प्रचार के प्रति कोई शिकायत नहीं। 'बल्कि हम आपकी सफलता भी चाहते हैं, यदि आप संयोग से, स्त्रियों को उनके पतियों के अनचाहे लोभ से बचा सकेंगे तो' किन्तु आप हमारे कार्य की निन्दा क्यों करते हैं, जो मनुष्य की प्रत्येक कमजोरी और आदत का ध्यान रखता है और उचित प्रयोग करने से जिसकी सफलता लगभग सदा निश्चित है।

यह प्रश्न बढ़ते हुए सन्तानों के भार से पीड़ित परिवारों की सहानुभूति द्वारा द्रवित हृदयवाली एक बहन ने किया है। मानुषिक पीड़ा पत्थर को भी पिघला देती है, फिर उपात्मा की बहनों को कैसे न प्रभावित करती। परन्तु यह लोगों को गलत रास्ते पर ले जा सकती है, जिस प्रकार डूबते हुए की भाँति किसी के पैर उखड़ जाँय और वह किसी बहते तिनके को पकड़ ले।

हम ऐसे समय में चल रहे हैं जब कि चीजों का महत्व बड़ी तीव्रता से बदल रहा है। हमें धीमी गति वाले परिणामों से सन्तोष नहीं होता। केवल अपनी जाति के या अपने देश के भले से ही सन्तोष नहीं होता। हम सारे मनुष्य समाज के लिये महसूस करते हैं या करना चाहते हैं, यह मनुष्यता की अपने ध्येय की यात्रा में बहुत बड़ी सफलता है, कि वे पुरानी हैं लेकिन हम अपना धैर्य छोड़कर या प्राचीन वस्तुओं का केवल इसलिए कि मनुष्य समाज की बुराइयाँ नहीं छोड़कर ठीक मनुष्य

इलाज भी कर सकते। हमारी आँखों में जो रत्न जोश मार रहा है, सम्भवतः हमारे पूर्वजों में भी चाहे अनिश्चित रूप में ही रहे हों, वह रत्न और वे साधन उन्होंने उपयोग किए थे, सम्भवतः उनका प्रयोग क्षितिज तक जो आशातीत विस्तृत हो गया दीखता है, उपयोगी सिद्ध होगा।

और मेरा निष्कर्ष, जो मेरे अनुभव के आधार पर है यह है कि जिस प्रकार सत्य और अहिंसा कुछ चुने हुए लोगों के लिए नहीं बल्कि मनुष्य जाति के दैनिक जीवन के लिये है, ठीक उसी प्रकार आत्मसंयम केवल कुछ महात्माओं के लिए नहीं, बल्कि समस्त मनुष्य समाज के लिए, और इसलिए, बहुत से लोग झूठे और अशान्त होंगे, मनुष्यता अपना स्तर तो नीचा नहीं करेगी। उसी प्रकार बहुत से लोगों के सहयोग न देने पर भी हम अपना स्तर नीचा नहीं कर सकते।

कोई भी चतुर न्यायाधीश झूठा निर्णय नहीं करेगा। वह ऐसा दिखाई देगा जैसे उसका हृदय कठिन हो गया हो क्योंकि उसे ज्ञात है कि सच्ची उदारता बुरा नियम बनने में नहीं।

हमें चाहिये कि अपनी शारीरिक लघुता को अपनी अमर आत्मा से न जोड़ें जो उसमें निवास करती है। हमें शरीर को आत्मा के नियमों को ध्यान में रखकर संयमित करना है। मेरी विनम्र राय में ऐसे नियम थोड़े और अपरिवर्तनशील हैं। और सारा मनुष्य समाज उन्हें समझ सकता है और उनके ऊपर चल सकता है। उनके कार्यान्वित करने के

ढंग में अन्तर नहीं हो सकता। केवल उनमें कमी ज्यादती
सकती है।

यदि हममें विश्वास हो, तो हम इसमें असफल नहीं हो स
क्योंकि मनुष्यता को अपनी लक्ष्य-सिद्धि में लाख वर्ष लग भी स
है। जवाहरलाल की भाषा में हमारा आदर्श यही होना चाहिए।

हमारी बहिन की चुनौती का उत्तर अभी नहीं मिला। आत्मसं
लोग बेकार नहीं है, वे अपना प्रचार कर रहे हैं। यदि सन्तति निग्रह
कृत्रिम साधनों के प्रयोग का प्रचार करने वालों से उनका ढंग भिन्न
तो उसका प्रचार भी भिन्न है। आत्मसंयमियों को दवाओं की आव
कता नहीं, वे इसलिये कि यह बेचने या देने का कोई विषय नहीं, इस
प्रकाशन नहीं करना चाहते। किन्तु उनकी आलोचना (कृत्रिम साधनों की
और उनके प्रयोग के विरुद्ध लोगों को चेतावनी देना, उनके प्रचा
का अङ्ग है। उसका क्रियात्मक रूप वही रहा है लेकिन उसे लोगों ने
देखा या पहिचाना नहीं। आत्मसंयम के पक्ष में प्रचार कार्य कभी स्थगित
नहीं रहा। सबसे प्रभावशाली कार्य उदाहरण द्वारा होता है। आत्मसंयम
का सफलता पूर्वक उपयोग करने वालों की संख्या जितनी ही अधिक होगी,
प्रचार का काम उतना ही प्रभावशाली होगा।

ब्रह्मचर्य

एक सज्जन लिखते हैं:—

"आप के विचारों को पढ़ कर मैं बहुत समय से यह मानता आया हूँ कि सन्तति-निरोध के लिये ब्रह्मचर्य ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ उपाय है; संभोग केवल सन्तानेच्छा से प्रेरित होकर ही होना चाहिये। बिना सन्तानेच्छा के भोग पाप है। इन बातों को सोचता हूँ तो कई प्रश्न उपस्थित होते हैं। सम्भोग सन्तान के लिए किया जाय यह ठीक है पर एक दो बार के भोग से सन्तान न हो, पर आशा कहाँ पिण्ड छोड़ती है। इस प्रकार वीर्य का बहुत कुछ अपव्यय अनचाहे भी हो सकता है। ऐसे व्यक्ति को क्या यह कहा जाय कि ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध होने के कारण उसे भोग का त्याग कर देना चाहिये? ऐसे त्याग के लिए तो बहुत आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। प्रायः ऐसा भी देखने में आया है कि सन्तान भरी उमर न होकर उत्तरावस्था में हुई है इसलिए आशा का त्याग कितना कठिन है। यह कठिनाई तब और भी बढ़ जाती है, जब दोनों स्त्री और पुरुष रोग से मुक्त हों।"

यह कठिनाई अवश्य है लेकिन ऐसी बातें मुश्किल तो हुआ ही करती हैं। मनुष्य अपनी उन्नति बगैर कठिनाई के कैसे कर सकता है? हिमालय पर चढ़ने के लिये जैसे-जैसे मनुष्य आगे बढ़ता है, कठिनाई बढ़ती ही जाती है। यहाँ तक कि हिमालय के सबसे ऊँचे शिखर पर आज तक कोई पहुँच नहीं सका है। इस प्रयत्न में कई मनुष्यों ने मृत्यु का

भेंट की है। हर साल चढ़ाई करने वाले नये नये पुरुषार्थी तैयार ह
हैं और निष्फल भी होते हैं, फिर भी इस प्रयास को वे छोड़ते नहीं
विषयेन्द्रिय का दमन तो हिमालय पहाड़ पर चढ़ने से तो कठिन है
लेकिन उसका परिणाम भी कितना ऊँचा है! हिमालय पर चढ़ने वाल
कुछ कीर्ति पायेगा, क्षणिक सुख पायेगा। इन्द्रियजित मनुष्य आत्म
नन्द पायेगा और उसका आनन्द दिन प्रति दिन बढ़ता जायगा। ब्रह
चर्य शास्त्र में तो ऐसा नियम माना गया है कि पुरुष वीर्य कभी निष्फ
होता ही नहीं और होना भी नहीं चाहिये और जैसा पुरुष के लिये
वैसा ही स्त्री के लिये भी इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। जब मनुष
अथवा पुरुष निर्विकार होते हैं तब वीर्य हानि असम्भवित हो जाती है
और भोगेच्छा का सर्वथा नाश हो जाता है, और जब पति पत्नी की
इच्छा करते हैं तभी एक दूसरे का मिलन होता है। और यही अर्थ
गृहस्थाश्रमी के ब्रह्मचर्य का है। अर्थात् स्त्री-पुरुष का मिलन सिर्फ
सन्तानोत्पत्ति के लिये उचित है, भोग तृप्ति के लिए कभी नहीं।

यह हुई कानूनी बात अथवा आदर्श की बात। यदि हम इस आदर्श
को स्वीकार करें, तो हम समझ सकते हैं कि भोगेच्छा की तृप्ति अनुचित
है। और हमें उसका यथोचित त्याग करना चाहिये। यह ठीक है कि
आज कोई इस नियम का पालन नहीं करता। आदर्श की बात करते हुए
हम शक्ति का ख्याल नहीं कर सकते। लेकिन आजकल भोग तृप्ति को आदर्श
बताया जाता है। ऐसा आदर्श कभी हो नहीं सकता। यह स्वयं सिद्ध
है। यदि भोग आदर्श है तो उसे मर्यादित नहीं होनी चाहिये। असमर्

नि भोग से नाश होता है यह सभी स्वीकार करते हैं। त्याग ही आदर्श
ी सकता है और प्राचीन काल से रहा है। मेरा कुछ ऐसा विश्वास बन
ा है कि ब्रह्मचर्य के नियमों को हम जानते नहीं हैं, इसलिए बड़ा
ानित पैदा होती है और ब्रह्मचर्य पालन में अनावश्यक कठिनाई मह-
स करते हैं। अब जो आपत्ति मुझे इस लेखक ने बताई है वह आपत्ति
ा नहीं रहती है क्योंकि सन्तान के हो जाने पर एक ही बार मिलन
ा सकता है। अगर वह निष्फल गया तो दोबारा उन स्त्री पुरुषों का
मिलन होना ही नहीं चाहिये। इस नियम को जानने के बाद इतना
ा कहा जा सकता है कि जब तक स्त्री ने गर्भ धारण नहीं किया तब
क प्रत्येक ऋतुस्नान के बाद जब तक गर्भ धारण नहीं हुआ है तब तक
ति मास एक बार स्त्री पुरुष का मिलन क्षंतव्य हो सकता है और वह
मिलन भोगतृप्ति के लिये न माना जाय। मेरा यह अनुभव है कि जो
नुष्य वचन से और कार्य से विकार रहित होता है, उसे मानसिक
अथवा शारीरिक व्याधि का किसी प्रकार का डर नहीं है। इतना ही
ही, बल्कि ऐसे निर्विकार व्यक्ति व्याधियों से भी मुक्त होते हैं और इसमें
ई आश्चर्य की बात नहीं है। जिस वीर्य से मनुष्य जैसा प्राणी पैदा
ा सकता है, उसके अविच्छिन्न संग्रह से अमोघ शक्ति होनी ही चाहिये।
ह बात शास्त्रों में तो कही गयी है; लेकिन हरएक मनुष्य इसे अपने
लिये मन से सिद्ध कर सकता है, और जो नियम पुरुषों के लिये है,
वही स्त्रियों के लिए भी है। आपत्ति सिर्फ यह है कि मनुष्य मन से
विकारमय रहते हुए शरीर से विकार रहित होने की व्यर्थ आशा करता

है और अन्त में स्नेह और आग्रह दोनों की धारा बहा हुआ होता की भाषा में सुन्दरता और स्निग्धता भी आ जाती है।

धर्म संकट

एक सज्जन लिखते हैं —

"करीब ढाई साल हुआ, हमारे शहर में एक घटना हो गई थी, जो इस प्रकार है —

एक वैश्य सज्जन की १६ बरस की एक कुमारी कन्या थी। इस लड़की का मामा, जिसकी उम्र लगभग २१ वर्ष की थी, स्थानीय कालेज में पढ़ता था। यह तो मालूम नहीं कि कब से इन दोनों मामा और भांजी में प्रेम था, पर जब बात खुल गई तो इन दोनों ने आत्महत्या कर ली। लड़की तो फौरन ही जहर खाने के बाद मर गयी पर लड़का दो रोज बाद अस्पताल में मरा। लड़की को गर्भ भी था। इस बात की शुरू-शुरू में तो खूब चर्चा चली। यहाँ तक कि अभागे माँ-बाप को शहर में रहना भारी हो गया। पर वक्त के साथ साथ यह बात भी दब गयी और लोग भूलने लगे। कभी जब ऐसी मिलती जुलती बात सुनने को मिलती है तब पुरानी बातों की भी चर्चा होती है [illegible] भी दोहरा दिया जाता है। पर उस अभा[illegible] को और लड़के को भी

दुःख भोग रहे थे, मैंने यह राय ज़ाहिर की थी कि ऐसी हालत में समाज को विवाह कर लेने की इजाजत दे देनी चाहिए। इस बात से समाज में भारी कहर उठा। आपकी इस पर क्या राय है।"

मैंने स्थान का और लेखक का नाम नहीं दिया है, क्योंकि लेखक नहीं चाहते कि उनका अथवा उनके शहर का नाम प्रकाशित किया जाय। तो भी इस प्रश्न पर जाहिर चर्चा आवश्यक है। मेरी तो यह राय है कि ऐसे सम्बन्ध जिस समाज में त्याज्य माने जाते हैं वहाँ विवाह का रूप वे यकायक नहीं ले सकते। लेकिन किसी की स्वतन्त्रता पर समाज या सम्बन्धी आक्रमण क्यों करें? ये मामा और भांजी सयानी उम्र के थे, अपना हित अहित समझ सकते थे। उन्हें पति-पत्नी के सम्बन्ध से रोकने का किसी को हक नहीं था। समाज भले ही इस सम्बन्ध को अस्वीकार करता, पर उन्हें आत्महत्या करने तक जाने देना तो बहुत बड़ा अत्याचार था।

उक्त प्रकार के सम्बन्ध का प्रतिबन्ध सर्वमान्य नहीं है। ईसाई, मुसलमान, पारसी इत्यादि कौमों में ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नहीं माने जाते—हिन्दुओं में भी प्रत्येक वर्ण में त्याज्य नहीं है। उसी वर्ण के भिन्न प्रान्त में भिन्न प्रथा है। दक्षिण में उच्च माने जाने वाले ब्राह्मणों में ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नहीं, बल्कि स्तुत्य भी माने जाते हैं। मतलब यह है कि ऐसे प्रतिबन्ध रूढ़ियों से बने हैं। यह देखने में नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्त्विक निर्णय से बने हैं।

लेकिन समाज के सब प्रतिबन्धों को नवयुवक वर्ग छिन्न-भिन्न करके

फेंक दें, यह भी नहीं होना चाहिये। इस लिये मेरा यह अभि[illegible] कि किसी समाज में रूढ़ि का त्याग करवाने के लिए लोकमत [illegible] करवाने की आवश्यकता है। इस बीच व्यक्तियों को ध्यान [illegible] चाहिये। धैर्य्य न रख सकें तो बहिष्कारादि को सहन करना चाहिये।

दूसरी ओर समाज का यह कर्तव्य है कि जो लोग समाज [illegible] तोड़ें उनके साथ निर्दयता का बर्ताव न किया जाय। बहिष्कार [illegible] अहिंसक होने चाहिये। उक्त आत्महत्याओं का दोष जिस समा[ज] [illegible] में हुई, उस पर अवश्य है, ऐसा ऊपर के पत्र से सिद्ध होता है।

विवाह की मर्यादा

एक मित्र लिखते हैं :—

"हरिजन सेवक" अंक में 'धर्म संकट' नामक आपका लेख [illegible] उसमें आपने लिखा है कि 'उक्त प्रकार के अर्थात् मामा [illegible] सम्बन्ध जैसे, सम्बन्ध का प्रतिबन्ध सर्वमान्य नहीं है। ...... प्रतिबन्ध रूढ़ियों से बने हैं। यह देखने में नहीं आता कि ये [illegible] किसी धार्मिक या तात्विक निर्णय से बने हैं।"

मेरा अनुमान है कि ये प्रतिबन्ध शायद सन्तानोत्पत्ति की [illegible] लगाये गये हैं। इस शास्त्र के ज्ञाता ऐसा मानते हैं कि [illegible] के मिश्रण से सन्तति अच्छी होती है इसलिये स्गोत्र और [illegible] कन्याओं का पाणिग्रहण नहीं किया जाता।

यदि यह माना जाय कि केवल रूढ़ि है तो फिर सगी और चचेरी बहनों के सम्बन्ध पर भी कैसे आपत्ति उठाई जा सकती है? यदि विवाह का हेतु सन्तानोत्पत्ति ही है और सन्तानोत्पादन के ही लिये दम्पति का संयोग करना योग्य है, तो फिर यह कन्या के चुनाव के औचित्य की कसौटी सुप्रजनन की क्षमता ही होनी चाहिये। क्या और कसौटियाँ गौण समझी जायँ? यदि हाँ, तो किस क्रम से यह प्रश्न सहज उठता है। मेरी राय में वह इस प्रकार होना चाहिये।

(१) पारस्परिक आकर्षण और प्रेम।
(२) सुप्रजनन की क्षमता।
(३) कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधा।
(४) समाज और देश की सेवा।
(५) आध्यात्मिक उन्नति।

आपका इस सम्बन्ध में क्या मत है?

हिन्दू शास्त्रों में पुत्रोत्पत्ति पर जोर दिया गया है। सधवाओं को आशीर्वाद दिया जाता है "अष्ट पुत्रा सौभाग्यवती भव"। आप जो यह प्रतिपादन करते हैं कि दम्पति संतान के लिये संयोग करें तो इसका क्या यही अर्थ है कि सिर्फ एक ही सन्तान उत्पन्न करें, फिर वह लड़का हो या लड़की? वंशवर्धन की इच्छा के साथ ही पुत्र से नाम चलता है, यह इच्छा भी जुड़ी हुई मालूम होती है। केवल लड़की से इस इच्छा का समाधान कैसे हो सकता है? बल्कि अभी तक समाज में 'लड़की के जन्म' का उतना स्वागत नहीं होता। जितना की लड़के के जन्म का होता

पड़ी और कहा है, नदी मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धती ने ऐसा ही किया और उसे रास्ता मिल गया। अब तो उसके अचरज का ठिकाना न रहा। वसिष्ठ के सौ पुत्रों की तो वह स्वयं ही माता थी। उसने वसिष्ठ से इसका रहस्य पूछा कि विश्वामित्र को सदा निराहारी और आपको सदा ब्रह्मचारी कैसे मानूँ? वसिष्ठ ने बताया—"जो केवल शरीर रक्षा के लिये ही ईश्वरार्पण बुद्धि से भोजन करता है, वह नित्य भोजन करते हुए भी निराहारी ही है। और जो केवल स्वधर्म पालन के लिये अनासक्ति पूर्वक सन्तानोत्पादन करता है, वह संयोग करते हुए भी ब्रह्मचारी ही है।"

परन्तु इसमें और मेरी समझ में तो शायद हिन्दू शास्त्र में भी केवल एक संतति फिर वह कन्या हो या पुत्र का विधान नहीं है। अतएव यदि आपको एक पुत्र और एक पुत्री का नियम मान्य हो, तो मैं समझता हूँ बहुतेरे दम्पतियों को समाधान हो जाना चाहिए। अन्यथा मुझे तो ऐसा लगता है कि बिना विवाह किये एक बार ब्रह्मचारी रह जाना शक्य हो सकता है, परन्तु विवाह करने पर केवल सन्तानोत्पादन के लिए और फिर भी प्रथम संतति के ही लिए संयोग करके फिर आजन्म संयम से रहना उससे कहीं कठिन है। मेरा तो ऐसा मानता जा रहा है कि "काम" मनुष्य प्रेरणा है। उससे संयम सुसंस्कार का सूचक है "संतति के लिए संयोग का नियम बना देने से सुसंस्कार, संयम या धर्म की तरफ मनुष्य की गति होती है, इसलिए यह वांछनीय है। सन्तानोत्पत्ति के ही लिए संयोग करने वाले संयमी

का आदर करूँगा कामेच्छा की तृप्ति करने वाले को भोगी कहूँ पर उसे पतित नहीं मानना चाहता, न ऐसा वातावरण ही पैदा क ठीक होगा कि पतित समझ कर लोग उसका तिरस्कार करें । विचार मे मेरी कहीं गलती होती हो तो बतावें ।

विवाह में जो मर्यादा बाँधी गयी है, उसका शास्त्रीय कारण मैं न जानता । रूढ़ी को ही, जो मर्यादा की वृद्धि के लिये बनाई जाती नैतिक कारण मानने मे कोई आपत्ति नहीं है । सन्तान हित की दृष्टि ही अगर भाई बहन के सम्बन्ध का प्रतिबन्ध योग्य है, तो चचेरी बह इत्यादि पर भी प्रतिबन्ध होना चाहिये । लेकिन भाई बहन के सम्बन्ध या ऐसे सम्बन्ध के अतिरिक्त कोई प्रतिबन्ध धर्म में नहीं माना जाता । इसलिये रूढ़ि का जो प्रतिबन्ध जिस समाज में हो उसका अनुकरण उचित मालूम देता है । नैतिक विवाह के लिये जो पाँच मर्यादाएँ हमारे मित्र ने रक्खी हैं; उनका क्रम बदलना चाहिये । पारस्परिक आकर्षण और प्रेम को अन्तिम स्थान देना चाहिये । अगर उसे प्रथम स्थान दिया जाय, तो दूसरी सब शर्तें उसके आश्रय मे जाने से निरर्थक बन सकती हैं । इसलिये उक्त क्रम में आध्यात्मिक उन्नति को प्रथम स्थान देना चाहिये । समाज और देश सेवा को दूसरा स्थान दिया जाय । कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधा को तीसरा । पारस्परिक आकर्षण और प्रेम को चौथा । इसका अर्थ यह हुआ कि जिस जगह इन प्रथम तीन शर्तों का अभाव हो, वहाँ पारस्परिक प्रेम को स्थान नहीं मिल सकता । अगर प्रेम को प्रथम स्थान दिया जाय, तो वह सर्वोपरि बन कर दूसरों की अवग-

सन्तान पैदा करता है और करना है। ऐसा अनेक बार के व्यवहार में देखने में आता है। प्राचीन और अर्वाचीन सत्य कथाओं में भी यह पाया जाता है, इसलिये यह कहना होगा कि उपर्युक्त तीन शर्तों का पालन होते हुए भी जहाँ दम्पति में आकर्षण नहीं है, वहाँ विवाह त्याज्य है। गुणसंगत को ... न माना जाय, क्योंकि वह एक वस्तु विवाह का कारण है, विवाह की शर्त नहीं।

हिंदू शास्त्र में पुत्रोत्पत्ति पर अवश्य जोर दिया गया है। वह उस काल के लिये ठीक था जब समाज में शायद पुत्र को अनिवार्य स्थान मिला हुआ था, और पुत्र वर्ग की बड़ी आवश्यकता थी। उसी कारण से एक से अधिक पत्नियों की भी इजाजत थी और अधिक पुत्रों में अधिक धर्म माना जाता था। धार्मिक दृष्टि से देखें, तो एक ही सन्तति 'धर्मज' या 'धर्मजा' है। मैं पुत्र और पुत्री के बीच भेद नहीं करता हूँ। दोनों एक समान स्वागत के योग्य हैं।

वशिष्ठ विश्वामित्र का दृष्टान्त सार रूप में अच्छा है। उसे शब्दशः सत्य अथवा शत्रु मानने की आवश्यकता नहीं। उससे इतना ही सार निकालना काफी है कि सन्तानोत्पत्ति के ही अर्थ किया हुआ संयोग ब्रह्मचर्य का विरोधी नहीं है। कामाग्नि की तृप्ति के कारण किया हुआ संयोग त्याज्य है उसे निंद्य मानने की आवश्यकता नहीं। असंख्य स्त्री पुरुषों का मिलन भोग के कारण ही होता है, और होता रहेगा। उससे जो दुष्परिणाम होता रहता है उन्हें भोगना पड़ेगा। जो मनुष्य अपने जीवन को धार्मिक बनाना चाहता है, जो जीवमात्र की सेवा को आदर्श

उत्तेजना देने के लिये किया जाय, यह चीज इतनी हीन है कि इसके प्रति घृणा शब्दों से नहीं प्रगट की जा सकती ... । मैं चाहती हूं कि इस सम्बंध में भारत के प्रमुख-अखबारों और मासिक पत्रों की क्या जवाबदारी है उसके बारे में आप लिखें। आपके पास आलोचना के लिये भेज सकूँ, ऐसी यह कोई पहली कटिंग नहीं है।

इस विज्ञापन में से कुछ भी अंश मैं यहाँ उद्धृत नहीं करना चाहता। पाठकों से सिर्फ इतना ही कहता हूँ कि जिस पुस्तक का यह विज्ञापन है उसमें के वर्जित लेखों का वर्णन करने में जितनी अश्लील भाषा का उपयोग किया जा सकता है उतना किया गया है इस पुस्तक का नाम "स्त्री के शरीर का सौंदर्य" है और विज्ञापन देने वाला फर्म पाठकों से कहता है कि जो यह पुस्तक खरीदेगा उसे "नवयुवक के लिये नया ज्ञान" और "सम्भोग अथवा संभोगी को कैसे रिझाया जाय" नामक यह दो पुस्तकें मुफ्त दी जायेंगी।

इस किस्म की पुस्तकों का विज्ञापन करने वालों को मैं किसी तरह रोक सकता हूँ या पत्र सम्पादकों और प्रकाशकों से उनके अखबारों द्वारा मुनाफा उठाने का इरादा मैं छुड़वा सकता हूँ। ऐसी आशा अगर यह बहिन रखती है, तो वह व्यर्थ है। ऐसे अश्लील पुस्तकों या विज्ञापनों के प्रकाशकों से मैं चाहे जितनी अपील करूँ उससे कोई मतलब निकलने का नहीं। किन्तु मैं पत्र लिखने वाली इस बहिन से और दूसरी ही ऐसी विदुषी बहनों से इतना कहना चाहता हूं कि वे बाहर मैदान में आवें और जो काम खास करके उनका है और जिसके लिये उनमें खास योग्यता

है, उस काम को वे शुरू कर दें। अक्सर देखने में आया है कि जिस मनुष्य को खराब नाम दे दिया जाता है और कुछ समय बाद वह स्त्री या पुरुष ऐसा मानने लगता है कि वह खुद खराब है। स्त्री को "अबला" कहना उसे बदनाम करना है। मैं नहीं जानता कि स्त्री किस प्रकार अबला है। ऐसा कहने का अर्थ अगर यह हो कि स्त्री में पुरुष की जैसी पाशविक वृत्ति नहीं है या उतनी मात्रा में नहीं है जितनी की पुरुष में होती है, तो यह आरोप माना जा सकता है। पर यह चीज तो स्त्री को पुरुष की अपेक्षा पुनीत बनाने वाली है। और स्त्री पुरुष की अपेक्षा तो पुनीत है ही। वह अगर आघात करने में निर्बल है तो कष्ट सहन करने में बलवान है। मैंने स्त्री को त्याग और अहिंसा की मूर्ति कहा है। अपने शील या सतीत्व की रक्षा के लिये पुरुष पर निर्भर न रहना उसे सीखना है। पुरुष ने स्त्री के सतीत्व की रक्षा की हो, ऐसा एक भी उदाहरण मुझे मालूम नहीं वह ऐसा करना चाहे तो भी नहीं कर सकता। निश्चय ही राम ने सीता के या पाँच पाण्डवों ने द्रौपदी की शील की रक्षा नहीं की। इन दोनों सतियों ने अपने सतीत्व के बल से ही अपने शील की रक्षा की। कोई भी मनुष्य और अपनी सम्मति के अपनी इज्जत आबरू नहीं खोता। कोई नरपशु किसी स्त्री को बेहोश करके उसकी लाज लूट ले तो इससे उस स्त्री के शील या सतीत्व का लोप नहीं होगा। इसी तरह कोई दुष्ट स्त्री किसी पुरुष को जड़ बना देने वाली दवा खिला दे और उससे अपना मनचाहा कराये तो उससे उस पुरुष के शील या चारित्र्य का नाश नहीं होता है।

आश्चर्य तो यह है कि सौंदर्य की प्रशंसा में पुस्तकें बिल्कुल नहीं लिखी गईं। तो फिर पुरुष की विषय-वासना उत्तेजित करने के लिए ही साहित्य क्यों हमेशा तैयार होता रहे? यह बात तो नहीं कि पुरुष ने स्त्री को विशेषणों से भूषित किया है, उन विशेषणों को सार्थक करना पसन्द है? स्त्री को क्या यह अच्छा लगता होगा कि उसके शरीर के सौंदर्य का पुरुष अपनी भोग लालसा के लिए दुरुपयोग करे? पुरुष के आगे अपनी देह की सुन्दरता दिखाना क्या उसे पसन्द होगा? यदि हाँ, तो किस लिये? मैं चाहता हूँ कि यह प्रश्न सुशिक्षित बहनें खुद अपने दिल से पूछें। ऐसे विज्ञापनों और ऐसे साहित्य से उनका दिल दुखता हो तो उन्हें इन चीजों के विरुद्ध अविराम युद्ध चलाना चाहिये, और एक क्षण में वे इन चीजों को बन्द करा देंगी। स्त्री में जिस प्रकार बुरा करने की, लोक का नाश करने की शक्ति है उसी प्रकार भला करने की, लोकहित साधन करने की शक्ति भी उसमें सोई हुई पड़ी है। यह भाव अगर स्त्री को हो जाय तो कितना अच्छा हो? अगर वह यह विचार छोड़ दें कि वह खुद अबला हैं और पुरुष की खेलने की गुड़िया होने के ही योग्य हैं तो वह खुद अपना तथा पुरुष का—फिर चाहे वह उनका पिता हो, पुत्र हो—या पति हो—जन्म सुधार सकती हैं। और दोनों के ही लिये इस संसार को अधिक सुखमय बना सकती हैं। राष्ट्र के बीच पागलपन भरे युद्धों से और ज्यादा पागलपन भरे समाज नीति की नींव के विरुद्ध लड़े जानेवाले युद्धों से अगर समाज को अपना संहार होने नहीं देना है, तो स्त्री को पुरुष की तरह नहीं; जैसे कि कुछ स्त्रियाँ करती हैं, बल्कि स्त्री की तरह अपना योग देना

ही होगा। अधिकांशत बिना किसी कारण के ही मानव प्राणियों के संहार करने की जो शक्ति पुरुष में है उस शक्ति में उसकी हमसरी करने से स्त्री मानव जाति को सुधार नहीं सकती। पुरुष की जिस भूल से पुरुष के साथ साथ स्त्री का भी विनाश होने वाला है। उस भूल में से पुरुष बचना उसका परम कर्तव्य है, यह स्त्री को समझ लेना चाहिये, य वाहियात विज्ञापन तो सिर्फ यही बताता है कि हवा का रुख किस तरफ है। इसमें बेशर्मी के साथ स्त्री का अनुचित लाभ उठाया गया है। दुनिया की जंगली जातियों की स्त्रियों के शरीर सौंदर्य को, भी इसने नहीं छोड़ा।

स्त्रियों में देवीत्व का झूठा आरोप

अहमदाबाद में गुजराती साहित्यिक सम्मेलन के अवसर पर ज्योति संघ
मक आन्दोलन की संचालिका महिलाओं की ओर से गांधीजी को एक
लिखा गया था जिसमें उस प्रस्ताव की एक प्रति भी थी जो उन्होंने
निक लेखकों की स्त्रियों के अश्लील चित्रण करने की प्रवृत्ति को
त करने के लिए—पास किया गया था। गांधीजी ने अनुभव
कि प्रस्ताव में काफी शक्ति थी और उन्होंने कहा —
नकी शिकायत यह है कि आधुनिक लेखक स्त्रियों का झूठा चित्रण
। जिस भावुकता के साथ लेखक उन्हें चित्रित करते और उनके

भारत का जिन असत्यता से वर्णन करते हैं उनसे वे अवगत हैं। क्या उनका सारा सौंदर्य और शक्ति पुरुषों की वासना भरी दृष्टि को मग्न कर जाने में ही है? जब वे लेखक से पूछती हैं (और यह न्यायसंगत है) कि उनका चित्रण सदा नग्न, और दुर्बल स्त्री के ही रूप में किया जाय जिसके लिये घर के सभी निम्नकोटि के कार्य नियत कर दिये जाते हैं और जिनके देवता उनके पति ही हैं। उनका वास्तविक चित्रण क्यों नहीं किया जाता। लोग कहती हैं हम न तो आकाश की अप्सराएँ हैं न गुड़ियाँ हैं और न वासना और न स्नायु के समूह ही हैं। हम इतना ही जानती हैं, जितने पुरुष और हमारे भीतर मनुष्यता का उतना ही आदर है। मैं उन्हें और उनके अस्तित्व को जानता हूँ। एक समय था जब दक्षिण अफ्रीका में मेरे निकट केवल स्त्रियाँ ही रह गई थीं क्योंकि उनके पति जेल जा चुके थे। लगभग ६० स्त्रियाँ और बालिकाएँ थीं और मैं उनका भाई और पिता सा हो गया था। मेरे संरक्षण में उन्होंने और संगठन प्राप्त किया। यहाँ तक कि अन्त में वे स्वयं जेल गईं।

लोग मुझसे कहते हैं कि हमारा साहित्य स्त्रियों में दैवी भावनाओं से भरा हुआ है। मैं कहता हूँ, यह बिल्कुल गलत है। आप जब उनके विषय में लिखने वाले होते हैं, तो उन्हें किस दृष्टिकोण से देखते हैं? उस समय आपको उन्हें माँ के रूप में देखना चाहिये और मैं विश्वास दिलाता हूँ कि संसार को आपकी लेखनी से पवित्रतम साहित्य प्रवाहित होगा। इतना पवित्र जितना प्यासी धरती को सींचने वाली जलधार होती है। उनकी आत्मिक तृष्णा मिटाने की जगह कुछ लेखक उनकी वासना को और

इसका करना मेरा कर्तव्य है, और इसको अब मैं और अधिक दिनों तक उपेक्षा नहीं कर सकता। पत्र उसने शुद्ध हिन्दुस्तानी में लिखा है, जिसका एक भाग मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूँ।

लड़कियों और तरुण स्त्रियों के सामने उनकी इच्छा के विरुद्ध ऐसे अवसर आ जाया करते हैं जब कि उन्हें अकेली जाने की हिम्मत करनी पड़ती है—जैसे तो उन्हें एक ही शहर में एक जगह से दूसरी जगह या एक शहर से दूसरे शहर को जाना होता है। और जब वे इस तरह अकेली होती हैं, तब गन्दी मनोवृत्ति वाले लोग उन्हें तंग किया करते हैं। और अगर कोई उन्हें रोकता है तो इससे भी आगे बढ़ने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती। मैं यह जानना चाहती हूँ कि ऐसे मौकों पर अहिंसा क्या भाग ले सकती है, हिंसा का उपयोग तो है ही। अगर किसी लड़की या स्त्री में काफी हिम्मत हो, तो उसके पास जो भी साधन होंगे उन्हें वह काम में लायेगी और एक बार बदमाशों को सबक सिखा देगी। वे कम से कम हंगामा तो मचा सकती हैं जिससे कि लोगों का ध्यान आकर्षित हो जाय और गुण्डे वहाँ से भाग जायँ, लेकिन मैं यह जानती हूँ कि इसके परिणाम स्वरूप विपत्ति सिर्फ टल जायगी, यह कोई स्थायी इलाज नहीं है। अशिष्ट व्यवहार करने वाले लोगों का अगर आपको पता है तो मुझे विश्वास है कि उन्हें अगर समझाया जाय तो वे आपकी प्रेम और नम्रता की बात सुनेंगे। पर उस आदमी के लिए आप क्या कहेंगे, जो साइकिल पर चढ़ा हुआ किसी लड़की या स्त्री को देखकर जिसके साथ कोई मर्द-

[illegible]

... जाने ... था। ... करने की ... ।
... ऐसा लगा कि ... है। ...
... नहीं था। ...
है। लेकिन मेरे हाथ में एक ... थी, किताब थी। ...
मेरा ... था ... की तरफ
... में आया, और निकलता गया,

जो इलाज गाड़िका के सवार पर ज़ोर से किताब मारकर किया, वह बिल्कुल ठीक है। वह बहुत पुराना इलाज है। मैं "हरिजन" में पहले भी लिख चुका हूँ कि यदि कोई व्यक्ति जबरदस्ती करने पर उतारू होना चाहता है, तो उसके रास्ते में शारीरिक कमज़ोरी भी रुकावट नहीं डालती भले ही उसके मुकाबले में शारीरिक दृष्टि से कोई बलवान विरोधी हो और हम यह भली भाँति जानते हैं कि आजकल तो जिस्मानी ताक़त इस्तेमाल करने के इतने ज्यादा तरीके ईजाद हो चुके हैं कि एक छोटी लेकिन काफ़ी समझदार लड़की किसी की हत्या और विनाश तक कर सकती है। जिन परिस्थितियों का जिक्र पत्र-लेखिका ने किया है, उन्हीं परिस्थितियों में लड़कियों को आत्म-रक्षा के तरीके सिखाने का रिवाज आजकल बढ़ रहा है। लेकिन वह लड़की भी खूब समझती है कि भले ही वह उस वक्त आत्म-रक्षा के साधन के तौर पर अपने हाथ की किताब मारकर बच गयी हो, लेकिन इस बढ़ती हुई बुराई का यह कोई असली इलाज नहीं है। भद्दे अश्लील मज़ाक के कारण बहुत घबराने या डर जाने की ज़रूरत नहीं। लेकिन इसकी ओर से आँख मूँद लेना भी ठीक नहीं। ऐसे सभी मामले अखबारों में छपा देने चाहिए। इस बुराई के भण्डाफोड़ करने में किसीका भी किसी प्रकार का लिहाज नहीं करना चाहिये। इस सार्वजनिक बुराई के लिए प्रबल लोकमत-जैसा कोई इलाज नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि इन मामलों को जनता बहुत उदासीन भाव से देखती है। लेकिन सिर्फ़ जनता को ही क्यों दोष दिया जाय? उसके सामने ऐसे गुस्ताखी के मामले भी तो आने चाहिएँ। चोरी के मामलों का पता लगाकर द्वारा

जो इलाज साइकिल के सवार पर जोर से किताब मारकर किया, वह बिल्कुल ठीक है। यह बहुत पुराना इलाज है। मैं "हरिजन" में पहले भी लिख चुका हूँ कि यदि कोई व्यक्ति जबरदस्ती करने पर उतारू होना चाहता है, तो उसके रास्ते में शारीरिक कमजोरी भी रुकावट नहीं डालती भले ही उसके मुकाबले में शारीरिक दृष्टि से कोई बलवान विरोधी हो और हम यह भली भाँति जानते हैं कि आजकल तो जिस्मानी ताकत इस्तेमाल करने के इतने प्यारा तरीके ईजाद हो चुके हैं कि एक छोटी लेकिन काफी समझदार लड़की किसी की हत्या और विनाश तक कर सकती है जिन परिस्थितियों का जिक्र पत्र-लेखिका ने किया है, उन्हीं परिस्थितियों में लड़कियों को आत्म-रक्षा के तरीके सिखाने का रिवाज आजकल बढ़ रहा है। लेकिन वह लड़की भी खूब समझती है कि भले ही वह उस वक्त आत्म-रक्षा के साधन के तौर पर अपने हाथ की किताब मारकर बच गई हो, लेकिन इस बढ़ती हुई बुराई का यह कोई असली इलाज नहीं है भद्दे अश्लील मजाक के कारण बहुत घबराने या डर जाने की जरूरत नहीं। लेकिन इसकी ओर से आँख मूँद लेना भी ठीक नहीं। ऐसे सब मामले अखबारों में छपा देने चाहिए। इस बुराई के भण्डाफोड़ करने में किसीका भी किसी प्रकार का लिहाज नहीं करना चाहिये। इस सार्वजनिक बुराई के लिए प्रबल लोकमत-जैसा कोई इलाज नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि इन मामलों को जनता बहुत उदासीन भाव से देखती है। लेकिन सिर्फ जनता को ही क्यों दोष दिया जाय? उसके सामने ऐसे गुस्ताखी के मामले भी तो आने चाहिएँ। चोरी के मामलों का पता लगाकर द्वारा

आधुनिक लड़कियाँ

ग्यारह लड़कियों का लिखा हुआ एक पत्र मुझे मिला है। उन्होंने
पने नाम व पते उसमें दिये हैं। मैं उनके उक्त पत्र को नीचे उद्धृत
रता हूँ।

"एक विद्यार्थिनी के पत्र का विवेचन करते हुए आपने हरिजन में
त्म-रक्षा कैसे करें?" शीर्षक का जो लेख लिखा है, वह खास ध्यान
पढ़ने योग्य है। मालूम होता है कि आधुनिक लड़कियों पर आपको
तनी ज्यादा चिढ़ है कि आपने उनके सम्बन्ध में यहाँ तक कह डाला
कि "आजकल की लड़कियों को तो अनेकों (भ्रमरों) की दृष्टि में
कर्षक बनना प्रिय है।" सामान्य स्त्री के सम्बन्ध में आपका यह
चार बहुत प्रेरणाप्रद या उत्साह-वर्द्धक नहीं।

इन दिनों जब कि स्त्रियाँ घर या एकान्तवास छोड़कर पुरुषों की
द करने और ज़िन्दगी के बोझे में समान हिस्सा लेने के लिए बाहर
कली हैं, सचमुच यह आश्चर्य की बात है कि पुरुष अगर उन्हें बिल्कुल
ताते हैं तो उसके लिए भी उन्हें ही बदनाम किया जाता है। इससे
कार नहीं किया जा सकता कि ऐसे उदाहरण बताये जा सकते हैं,
नमें दोनों ही पक्षों का अपराध एक-सा साबित किया जा सकता है।
सी भी कुछ लड़कियाँ हो सकती हैं, जिन्हें कि अनेकों भ्रमरों की दृष्टि
आकर्षक बनना प्रिय हो। पर ऐसे उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि
लों की शोध में सड़कों पर भ्रमनेवाले अनेक भ्रमर भी मौजूद हैं

किन्तु यह कभी नहीं कहा जा सकता और न कहना चाहिये कि सभी आधुनिक लड़कियाँ ऐसी ही हैं या आधुनिक युवक सभी भ्रमर हैं। आप खुद अनेक आधुनिक लड़कियों के सम्पर्क में आये हैं। इसीलिए उनके दृढ़ निश्चय, त्याग और दूसरे स्त्रीत्व के सद्गुणों की छाप आपके ऊपर पड़नी ही चाहिये।

आपको पत्र लिखनेवाली बहिन ने जिस किस्म के असभ्य बर्ताव का निर्देश किया है, उसके खिलाफ लोकमत तैयार करने का काम लड़कियों का नहीं है। इसका कारण झूठी शर्म नहीं, बल्कि यह है कि उनके कहने पर कोई ध्यान नहीं देता।

लेकिन जब आप जैसे जगद्वन्द्य महापुरुष ऐसी बात कहते हैं, तो इससे तो यही ध्वनि निकलती है कि "नारी नरक की खान" वाली जीर्ण-शीर्ण और अनुचित लोकोक्ति का आप भी समर्थन करते हैं।

किन्तु ऊपर जो लिखा है, उससे यह न मान लीजियेगा आधुनिक जमाने की लड़कियों में आपके प्रति आदर की भावना नहीं है। हरेक नवयुवक के मन में आपके प्रति जितना आदर है, उतना ही लड़कियों में भी है। उनका कोई अपमान करे या उनके प्रति दया दिखाये, यह सब उन्हें बहुत ही बुरा लगता है। उनका अगर सचमुच कोई अपराध हो, तो वे *अपना तौर-तरीका सुधारने के लिए तैयार हैं। अगर उनका कोई कसूर* हो, तो उसे निश्चित रूप से साबित करने के बाद ही उन्हें दोष देना चाहिये। इस सम्बन्ध में वे "अबला" होने के आश्रय का बहाना नहीं लेना चाहतीं, न यही सहन कर सकती हैं कि न्यायाधीश उन्हें मनमाने

तौर पर असाधारण ढंग से वे गुनहगार नहीं हैं। वे सा
स्वीकार करना ही चाहिए और आधुनिक लड़कियों में स्त्र
करने की काफी हिम्मत है।"

पत्र लिखनेवाली इन बहिनों को शायद यह मालूम न हो
दक्षिण अफ्रिका में ४० वर्ष से ऊपर का समय हुआ जब कि अं
किसी का जन्म भी नहीं हुआ होगा। उस वक्त मैंने भारत की स्त्रियों
की सेवा शुरू की थी। मेरा यह विश्वास है कि स्त्री-वर्ग के प्रति अपमान
जनक कोई लेख मेरी लेखनी से निकल ही नहीं सकता। स्त्रियों के
लिए मेरे मन में इतना अधिक आदर है कि यह विचार मेरे दिमाग में
कभी आ ही नहीं सकता कि वे अवगुणों से भरी हुई हैं। अंग्रेजी में
कहावत है कि स्त्री पुरुष का उत्तम अर्द्धांग है। और मेरा वह लेख,
विद्यार्थियों की शर्मनाक करतूत को सामने रखने के लिए लिखा ग
लड़कियों के दोषों को जाहिर करने के लिए नहीं। मगर इस र
निदान बताने में, यदि मुझे उचित इलाज बताना हो, तो यह
जिन कारणों से पैदा हुआ, उन सब चीजों का उल्लेख करना भी
फर्ज था।

"आधुनिक लड़की" इस शब्द का एक खास अर्थ है। इसलिए मे
कहने की जरूरत ही नहीं थी कि मेरा कथन अमुक लड़की —— ऐसा
है। अँग्रेजी शिक्षा पायी हुई सभी लड़कियाँ "आधुनिक लड़कियाँ" नहीं
है। जिन्हें आधुनिक लड़की की भावना और रहन-सहन का ज़रा भी
स्पर्श नहीं हुआ, ऐसी बहुत-सी लड़कियों को मैं जानता हूँ। फिर भी

कितनी ऐसी भी हैं कि जो "आधुनिक लड़कियाँ" बन गयी हैं। मेरे कहने का उद्देश्य हिन्दुस्तान के लड़कियों को इतनी चेतावनी देने का था कि वे आधुनिक लड़की की नकल न करें और ऐसा करके जो प्रश्न बड़ा विकट और भयंकर बन गया है, उसे और अधिक असाध्य बना दें। क्योंकि इन बहनों का पत्र मुझे जब मिला, ठीक उसी समय आन्ध्र देश की एक विद्यार्थिनी का भी पत्र मिला। उसमें आन्ध्र के विद्यार्थियों के बर्ताव के बारे में बहुत बुरी तरह शिकायत की गयी है। उनके बर्ताव का जो वर्णन उसमें दिया गया है, वह तो लाहौर की लड़कियों द्वारा लिखे गए बर्ताव से भी बदतर मालूम होता है। आन्ध्र देश की वह कन्या मुझे लिखती है कि उसकी सहेलियों की सादी वेश-भूषा उनकी कुछ भी रक्षा नहीं कर सकती। उन लड़कों की बर्बरता दुनियाँ के सामने रख देने की हिम्मत नहीं, जो शिक्षा-संस्था के लिए कलंक स्वरूप हैं। इस शिकायत की ओर मैं आन्ध्र-विश्वविद्यालय के अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करता हूँ।

उपर्युक्त पत्र लिखनेवाली ग्यारहों बहनों को मेरी सूचना यह है कि वे विद्यार्थियों के असभ्य व्यवहार के खिलाफ जिहाद शुरू कर दें। जो अपने बल पर जूझते हैं, उन्हीं की ईश्वर मदद करता है। पुरुष की गुण्डा-शाही से अपनी रक्षा करने की कला लड़कियों को सीखनी ही चाहिए।

सफल होंगे यदि वह अपनी शारीरिक शक्ति या किसी अस्त्र पर ही निर्भर रहे, तो निश्चय ही शक्ति न रहने पर उसकी मानहानि होगी ही।

दूसरा प्रश्न सरल है। पिता या मित्र अपने 'भाई' और उसके शत्रु से सीन उपस्थित होकर या तो को उसकी दुर्वृत्ति के विरुद्ध समझायें, या अपना जीवन अर्पण करने को प्रस्तुत हो जायँ। इस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करके वह अपना कर्तव्य ही नहीं पालन करेगा, बल्कि अपने को ऐसी शक्ति प्रदान करेगा जिससे कि वह अपनी सम्मान की रक्षा करने में समर्थ होगी।

प्रश्न—यहीं पर कठिनाई उपस्थित होती है। कोई स्त्री अपना जीवन कैसे समर्पण करे? क्या उसके लिये ऐसा करना सम्भव है?

उत्तर—निश्चय ही पुरुष की अपेक्षा स्त्री के लिए ऐसा सदा संभव है। इससे भी छोटे कार्यों के लिए स्त्रियाँ जीवन अर्पण कर सकती हैं, यह मुझे मालूम है। कुछ दिनों पहले एक बालिका ने अपने को केवल इसीलिए जीवित जला डाला कि उसे साधारण अध्ययन करने से इन्कार करने के लिए दण्ड दिया जा रहा था। और उसने अपना परित्याग बड़ी शान्ति और साहसपूर्वक किया। उसने एक दीपक से अपनी साड़ी जला ली और उसके मुँह से आवाज तक न निकली, ताकि जबतक सब समाप्त न हो जाय, समीपवर्ती लोगों को इस घटना की सूचना तक न मिले, मैं उसका उदाहरण इसीलिए नहीं दे रहा हूँ कि उसका अनुकरण किया जाय, बल्कि यह दिखाने के लिए कि कितनी सरलता से अपना जीवन त्याग कर सकती है। मैं इस प्रकार के साहस से असहमत हूँ,

में सहमत हूँ कि इसके लिये आन्तरिक प्रकाश की आवश्यकता है, अक्ल की नहीं।

प्रश्न—बच्चों का सामना करते समय क्रोध और हिंसा से कैसे बचाया जा सकता है?

उत्तर—तुम्हें अपनी पुरानी कहावत याद होगी कि "पाँच वर्ष की अवस्था तक बच्चे के साथ खेलना चाहिये, १० वर्ष तक ताड़ना चाहिये, १६ वर्ष का हो जाने पर उसके साथ मित्रता का व्यवहार करना चाहिए।" परन्तु आपको दुःखी न होना चाहिए। यदि कभी बच्चे पर क्रोध आ जाय तो मैं उस क्रोध को अहिंसात्मक ही कहूँगा। मैं चतुर माताओं की बात कर रहा हूँ, मूर्खों की नहीं, जिन्हें माँ कहा भी नहीं जा सकता है।

'एक त्याग'

सन् १८९१ में इङ्गलैण्ड से वापस आकर मैंने घर का भार अपने ऊपर ले लिया और बच्चों के साथ—जिनमें लड़के और लड़कियाँ दोनों थीं—उनके कन्धों पर हाथ रखकर घूमने की आदत डाली। ये मेरे भाई के बच्चे थे। उम्र में बड़े हो गये तब भी हमारी यह आदत बनी रही और परिवारों की बढ़ती के साथ-साथ, यह इतनी बढ़ती गई कि लोग इसे गौर से देखने लगे।

बहुत समय तक, जब तक साबरमती आश्रम के एक वासी ने मुझे यह नहीं बताया कि मेरा बड़े लड़कों और लड़कियों के साथ इस प्रकार का व्यवहार सामाजिक शिष्टता के विरुद्ध है, मेरी उन बच्चों को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाने की तनिक भी इच्छा नहीं थी। परन्तु उस वासी के साथ वाद-विवाद होने के बाद मैं वैसा ही करता रहा। हाल में ही दो सहकारियों ने जो यहाँ आये थे कहा, कि सम्भव है, मेरी यह आदत समाज के सामने एक बुरा उदाहरण रक्खे। अतः मुझे यह आदत छोड़ देनी चाहिये। वैसे-तो मैं मित्रों की चेतावनी को अवहेलना की दृष्टि से नहीं देखता, परन्तु उनका तर्क मुझे उचित न लगा। ऐसी हालत में मैंने आश्रम के पाँच वासियों की राय ली। उन्होंने कहा कि युनिवर्सिटी के विद्यार्थी के प्रभाव में एक छात्रा थी, यह उससे बहुत तरह का स्वच्छन्द व्यवहार करता था और कहता था कि वह उसे अपनी बहन की तरह मानता है। इस बाह्य-प्रेम प्रदर्शन से बच सकना उसके

लिए नितान्त असंभव है ऐसी किसी प्रकार की अपवित्रता को ध्यान कराने पर वह घृणा प्रदर्शित करता था परन्तु यदि मैं बताऊँ कि वह लड़का क्या कर रहा था, तो पाठक देखेंगे कि उसकी सारी स्वच्छन्दता अपवित्र थी। जब मैंने उसका पत्र व्यवहार पढ़ा, तो मुझे तथा और लोगों को, जिन्होंने उसे देखा पता चला कि या तो वह पाखण्डी था या उसे अपने विषय में भ्रम था।

किसी प्रकार इस खोज से मैं सोचने लगा। मैंने पिछले दोनों सहकारियों की बात याद की और विचारा, यदि वह लड़का अपने पक्ष के लिए मेरे उदाहरण का सहारा ले तो मुझे कैसा लगेगा? मैं यह भी बता देना चाहता हूँ कि वह लड़की, जो उस युवक की इच्छाओं का शिकार हो रही है, जो कि उसे पवित्र और भाई की तरह समझती है, उन व्यवहारों को पसन्द नहीं करती, बल्कि उनका विरोध करती है, परन्तु लड़के के कार्यों को रोकने में असमर्थ है। इस घटना को लेकर अपने ऊपर विचार करने का परिणाम यह हुआ कि दो-तीन दिनों में मैंने अपनी आदत छोड़ दी और वर्धाश्रम के वासियों को इसी महीने की १२ तारीख को सूचना भेज दी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह निर्णय करते समय मुझे दुःख हुआ। इस आदत के कारण या आदत के रहते समय मेरे मन में कभी कोई अपवित्र विचार नहीं आया। मेरा व्यवहार खुला हुआ था। मेरा विश्वास है, यह एक माता-पिता की तरह का व्यवहार था और मेरे संरक्षण में रहने वाली न जाने कितनी लड़कियों में मेरा इतना विश्वास हो गया है, जितना शायद ही कभी

गी था रहा हो। मैं ऐसे ब्रह्मचर्य का समर्थक नहीं हूँ, जिसकी रक्षा के
ए कोई दीवार खड़ी करनी पड़े और जो थोड़ी भी लालच से टूट
ाय; परन्तु साथ ही-साथ मैं उन खतरों को भी जानता हूँ जो मेरी तरह
स्वच्छन्दता से उत्पन्न हो सकते हैं।

मेरी आदत चाहे कितनी भी पवित्र क्यों न रही हो, इस चीज़ से
मे छोड़ देनी पड़ी। मैं एक ऐसा अनुभव कर रहा हूँ, जिसमें सतत
चेत रहने की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए हजारों लोग मेरे हर
ाम को बड़े गौर से देखते हैं। मुझे ऐसे काम न करने चाहिए, जिनके
न में बहस करने की आवश्यकता हो। मेरा उदाहरण सबके लिये नहीं
ा। उस युवक की घटना से चेतावनी मिली है। मुझे आशा है कि
रा यह त्याग ऐसे सभी लोगों की रक्षा करेगा, जिन्होंने मेरी देखादेखी
ा कभी गलती की होगी। निष्कलुष यौवन एक अमूल्य सम्पत्ति है,
से क्षणिक उद्रेक के लिए जो सुख कहा जाता है, बहाना नहीं चाहिये,
ौर इस लड़की की भाँति जो शक्तिहीन हों, उन्हें चाहिए कि इस
कार के युवकों के व्यवहारों का विरोध करने की क्षमता प्राप्त करें, चाहे
वे निरपराध ही क्यों न घोषित किये जायँ। ये युवक या तो गुण्डे होते
हैं, या इन्हें यह ज्ञात नहीं होता कि वे क्या कर रहे हैं।

उदार बहिनें

उदि प्रिंग लड़कियों के कालिज जाफना में व्याख्यान देते हुए गांधीजी ने कहा —

आज प्रातःकाल तुम लोगों से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। मुझे तुम लोगों के छोटे-छोटे उपहार, जो अपने हृदय के उद्‌गार-स्वरूप तुमने एक बड़े उपहार के रूप में मिलाकर दिये हैं, ठीक नहीं लगे। मैं जानता हूँ, लड़कों की अपेक्षा अधिक संकोची होने के कारण तुम यह नहीं बताना चाहती कि तुमने मुझे कुछ भी दिया है, परन्तु मेरे भारतवर्ष में हजारों लाखों लड़कियों से मिलने के कारण, उनके लिये असम्भव है कि कोई अच्छा काम जो वे करें, मुझसे छिपा रक्खें।

कुछ ऐसी भी लड़कियाँ हैं, जो अपने बुरे काम भी मुझसे कहने में नहीं हिचकतीं। मैं आशा करता हूँ कि यहाँ उपस्थित कोई भी लड़की कोई बुरा काम नहीं करती। मेरे पास इतना समय नहीं कि इसकी छानबीन करूँ, इसलिये मैं इस विषय में प्रश्नों से तुम्हें परेशान नहीं करूँगा। लेकिन, यदि हमारे बीच में ऐसी लड़कियाँ हैं, जो बुरे काम करती हैं, तो मैं उन्हें बता देना चाहता हूँ कि उनकी शिक्षा व्यर्थ है।

माँ-बाप तुम्हें यहाँ गुड़ियाँ बनने के लिये नहीं भेजते, बल्कि उदार बहनें बनने के लिये, जिसकी वेष-भूषा ही दूसरी होती है। जब से वह अपने से गरीबों और भाग्यहीनों के विषय में अधिक ध्यान देने लगती है और अपने विषय में कम सोचने-विचारने लगती है, उसके बाद से तुरन्त

र उदार बहन कहलाने लगती हैं। तुम उदार बहनें बन गयी हो; योंकि तुमने ऐसे लोगों के लिये उपहार दिये हैं, जो तुमसे गरीब हैं।

थोड़ा धन देना सरल है, किन्तु स्वयं थोड़ा भी काम करना उससे ठिन है। यदि तुम्हें उन लोगों से सच्ची सहानुभूति है, जिनके लिये मने यह भेंट दी है, तो खादी पहनो जो उनकी बनाई हुई वस्तु है। दि खादी तुम्हारे सामने लायी जाय और तुम यह कहो कि "खादी कुछ ुरदुरी है, हम इसे नहीं पहन सकतीं" तो मैं यही समझूँगा कि तुम्हारे ीतर आत्म-त्याग की भावना नहीं है।

यह इतनी सुन्दर चीज है कि इसमें छोटे-बड़े, छूत-अछूत का कोई ेद-भाव नहीं, और यदि तुम्हारा मन भी ऐसा ही चाहता है और अपने ी कुछ लड़कियों से ऊँचा नहीं समझती, तो सचमुच बड़ा अच्छा है।

भगवान तुम्हारा भला करे!

छात्राओं को सलाह

अपने जाफना रामनाथन गर्ल्स कालेज के व्याख्यान में गांधीजी ने कहा था.—

लङ्का के विभिन्न पाठशालाओं का दौरा समाप्त करने के लिए यहाँ आने से आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है।

तुम्हारी इस प्रतिज्ञा से, कि आज तुम अपना वार्षिक अधिवेशन करोगी और खादी के लिए धन एकत्र करोगी, मैं प्रभावित हुआ हूँ। मैं यह जानता हूँ कि यह झूठी प्रतिज्ञा नहीं है, बल्कि तुम धार्मिक रूप से इसकी पूर्ति करोगी। यदि ये करोड़ों लोग, जिनकी ओर से मैं भ्रमण कर रहा हूँ, अपनी बहनों के इस हृद् प्रस्ताव को जान पाते, तो मैं जानता हूँ, उनके दिलों को प्रसन्नता होती। परन्तु उन्हें यह जानकर दुःख होगा कि ये गूँगे करोड़ों लोग, जिनके लिए तुम लोगों ने तथा लङ्का के लोगों ने तमाम उपहार दिये हैं, यदि उन्हें समझाने की चेष्टा करूँ, तो भी समझ नहीं पायेंगे। उनके दुःख-भरे जीवन का सम्भवतः ऐसा कोई वर्णन नहीं हो सकता, जो उसका सच्चा रूप तुम्हारे सामने रक्खे।

इसके बाद तुरन्त मैं इस प्रश्न पर पहुँचता हूँ, कि तुम लोग इस तरह के लोगों के लिए क्या करोगी?' थोड़ी सादगी का सुझाव पेश करना आसान है, परन्तु यह तो इस प्रश्न के साथ खिलवाड़ करना होगा।

इसी प्रकार के विचारों से मैं नतीजे पर पहुँचा। जिस प्रकार मैं

रमे कर रहा हूँ, मैंने हो अपने से कहा—"यदि तुम इन दलित लोगों को अपने बीच में एक शृंखला जोड़ सको, तो तुम्हारे लिए और संसार के लिए कुछ आशा है।"

इस पाठशाला में तुम्हें धार्मिक शिक्षा बड़े अच्छे ढंग से दी जाती है। यहाँ एक सुन्दर मन्दिर भी है। यहाँ के पाठ्यक्रम से यह भी पता चलता है कि दिन में सबसे पहले तुम पूजा करती हो, जो बड़ा अच्छा और प्रगतिशील है। लेकिन, यदि प्रति-दिन यह कार्यरूप में परिणत नहीं किया जाता, तो यहाँ नम्रता से यह एक रस्म-अदाई ही तक रह जायगा। इसी लिए मैं कहता हूँ कि पूजा को कार्य-रूप में लाने के लिए चर्खे का प्रयोग करो। आधे घण्टे इसे लेकर बैठो और इन करोड़ों आदमियों के विषय में सोचो और ईश्वर के नाम पर कहो कि मैं इन्हीं के लिए कातती हूँ।" यदि हृदय से और यह जानकर कि तुम इस कार्य से और सम्पन्न तथा विनम्र हो और यदि तुम दिखाने के लिए नहीं, बल्कि अपने अंगों को ढकने के लिए पहनोगी, तो तुम्हें खादी पहनने में और अपने तथा करोड़ों लोगों में सम्बन्ध स्थापित करने में कोई हिचक न होगी।

यहाँ की लड़कियों से मैं केवल इतना ही नहीं कहना चाहता। अगर तुम यह चाहती हो कि सर रामनाथ ने तुम्हारा जो ध्यान रखा और तुम्हारे लिए जो कुछ किया तथा श्रीमती रामनाथ जो कुछ तुम्हारे लिए कर रही हैं उसके योग्य बने रहो तो तुम्हें और भी बहुत सी चीजें करनी होंगी। मैंने देखा है कि तुम्हारी पत्रिकाओं में पुराने स्कूलों में

जो काम लड़कियाँ कर रही हैं, उसको गर्व के साथ वर्णन किया गया है। मैंने इस तरह की भी नोटिस देखी है। अमुक ने अमुक से विवाह किया—४ या ५ नोटिसें मेरा ऐसा विचार है कि जो लड़की २२ या २५ साल की अवस्था पर पहुँच गयी हो, उसके विवाह करने में कोई हर्ज नहीं। लेकिन इन नोटिसों में एक भी ऐसी लड़की नहीं देखी, जिसने अपना जीवन सेवा के लिए अर्पण कर दिया हो। इसलिए मैं तुमसे वही कहना चाहता हूँ जो हिजहाईनेस महाराज कालेज बंगलौर की लड़कियों से कहा था कि शिक्षा के लिए जो प्रयत्न किया जाता है और यदि लड़कियाँ स्कूल छोड़ते ही जीवन से अलग हो जायें और गुड़ियाँ बन जायँ तो हमें बहुत थोड़ी नीव मिलेगी। स्कूल और कालेज छोड़ने के साथ ही बहुत सी लड़कियाँ सामाजिक जीवन से अलग हो जाती हैं। इस जगह की लड़कियों को ऐसा न चाहिए। तुम्हें मिस एमरी तथा अन्य लोगों का उदाहरण न भूलना चाहिए, जो यहाँ संरक्षण कर रही हैं। और यदि मैं भूल न कहता होऊँ तो ब्रह्मचारिणी हैं।

हर लड़की हर हिन्दुस्तानी लड़की, विवाह करने के लिए ही नहीं पैदा हुई है। मैं बहुत-सी ऐसी लड़कियों को बता सकता हूँ, जिन्होंने एक पुरुष की सेवा की जगह अपना जीवन सेवा के लिए दे दिया है। यही समय है जब हिन्दू लड़कियाँ अपने में से पार्वती और सीता-जैसी स्त्रियाँ पैदा करें।

तुम अपने को 'सैत्रिती' कहती हो। तुम्हें मालूम है, पार्वती ने क्या किया था? अपने पति के लिए उसने धन नहीं लगाया था और न

अपने को ही बेचा था और आज वह हिन्दू समाज में सात सतियों में से एक मानकर पूजी जाती है—इसलिए नहीं कि उसने किसी विद्यालय में कोई डिग्री पायी थी, बल्कि अपनी अभूतपूर्व तपस्या के कारण।

मैं यहाँ देखता हूँ कि दहेज की घृणित प्रथा है। इसी कारण युवती स्त्रियों को उपयुक्त वर मिलना कठिन हो जाता है। बड़ी अवस्थावाली लड़कियों से तुम में से कुछ बड़ी हो गयी हैं—इस प्रकार की कुप्रथाओं के विरोध करने की आशा की जाती है। यदि करना पड़ा, तो तुम्हें जीवन पर्यन्त या कुछ समय तक कुमारी रहना पड़ेगा। फिर जब तुम्हें जीवन-साथी की आवश्यकता होगी, तो तुम्हें ऐसे पुरुष की तलाश नहीं होगी जो धनवान, रूपवान प्रसिद्ध हो, बल्कि जिसमें चरित्र का निर्माण करने वाले सभी अनुपम गुण हों। तुम्हें मालूम है, नारदजी ने शिवजी के विषय में पार्वती से क्या कहा था—दुबला-पतला, भस्म लगा हुआ शरीर, शरीर में कोई सौन्दर्य नहीं, ब्रह्मचारी—और पार्वती ने कहा, "हाँ वही मेरे पति होंगे।" तुम्हें बहुत से शिव नहीं मिलेंगे, जबतक तुम में से कुछ लड़कियाँ तपस्या करने को तैयार न होंगी—पार्वती की भाँति हजारों वर्ष नहीं। हम दुर्बल प्राणी ऐसा नहीं कर सकते, परन्तु तुम जीवनभर तो ऐसा कर ही सकती हो।

यदि तुम ये बातें स्वीकार करो तो तुम्हारा गुड़ियों की तरह दिखाई देना बन्द हो जाय और तुम्हारी इच्छा होगी कि पार्वती, सीता, दमयन्ती सावित्री की भाँति सती बनो। मेरी विनम्र राय में उसी समय (उसके पहले नहीं) इस तरह की संस्था के योग्य हो सकोगी।

ईश्वर करे तुम्हारे हृदय में भी ऐसी इच्छायें जगें और यदि ऐसा हुआ तो वह इसे कार्य-रूप में परिणत करने में सहायक हो!

बाल-विवाह का शाप

मिसेज मारगेरेट ई० कज़िन्स ने मेरे पास एक दुर्घटना का समाचार भेजा है। मालूम पड़ता है कि यह दुर्घटना अभी हाल में बाल-विवाह के कारण मद्रास में हुई है। इस विवाह में 'वर' २६ वर्ष का तथा कन्या १३ वर्ष की थी। ये पति-पत्नी मुश्किल से १३ ही दिन साथ रह पाये होंगे की लड़की जलकर मर गई। ज्यूरी ने यह फैसला दिया है कि पति कहलाने वाले उस पुरुष के असहनीय और निर्दय बलात्कार के कारण उसने आत्महत्या की थी। लड़की के मरने के समय दिये हुये बयान से मालूम होता है कि उस 'पति' ने ही उसके कपड़ों में आग लगायी थी। कामातुर लोगों को विवेक और दया नहीं होती।

परन्तु हमें यहाँ इस बात से सरोकार नहीं कि वह कैसे मरी, किन्तु इन बातों से तो कोई इनकार नहीं कर सकता कि—

(१) उसका विवाह १३ वर्ष की आयु में किया गया था।

(२) उसकी कामेच्छा तो थी ही नहीं, क्योंकि उसने पति की काम-चेष्टा का विरोध किया था।

(३) उस पति ने उसके साथ जबर्दस्ती जरूर की। और, वह लड़की अब संसार में नहीं है।

किसी पाशविक प्रथा की धर्म पुष्टि करना धर्म नहीं, अधर्म है। स्मृतियों में परस्पर-विरोधी वाक्य भरे पड़े हैं। इन विरोधों से तो इत्मीनान के काबिल यही एक नतीजा निकल सकता है कि उन वाक्यों को, जो प्रचलित और सर्वमान्य नीति के और खासकर स्मृतियों में ही लिखित आदेशों के विपरीत हैं, बेशक समझकर छोड़ देना चाहिए। एक ही पुरुष एक ही समय में आत्म-संयम का उपदेश देनेवाला और पशु-वृत्ति को उत्तेजित करनेवाला वाक्य नहीं लिख सकता। जिसे आत्मसंयम से कुछ भी सरोकार न हो और पाप में डूबा पड़ा हो, वही यह कह सकता है कि कन्या के ऋतुमती होने के पूर्व ही उसका विवाह न करने में पाप लगता है। मानना तो यह चाहिये कि रजस्वला होने के बाद भी कुछ बरस तक लड़की का विवाह करना पाप है। उसके पहले तो विवाह का ख्याल भी नहीं किया जा सकता। रजस्वला होने के साथ ही लड़की संतति उत्पन्न करने के योग्य इसी भाँति नहीं हो जाती जैसे कि मूँछों के समगते ही कोई लड़का सन्तान उत्पन्न करने योग्य नहीं हो जाता है।

बाल-विवाह की यह प्रथा नैतिक और शारीरिक दोनों ही प्रकार से हानिकारक है। यह हमारी नीति की जड़ काटती है और हममें शारीरिक निर्बलता लाती है। ऐसी प्रथाओं को रहने देकर हम स्वराज्य और ईश्वर से दूर जाते हैं। जिस आदमी को नाजुक उमर की लड़की के बारे में कुछ चिन्ता नहीं है, उसे ईश्वर की भी कोई परवाह न होगी। अधकचरे पुरुषों में तो स्वराज्य के लिये लड़ने की और न उसे पाने पर कायम रखने की ही ताकत होती है। स्वराज्य की लड़ाई का अर्थ केवल

राजनैतिक जागृति ही नहीं है, बल्कि सभी प्रकार की सामाजिक, शिक्षा सम्बन्धी, नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक जागृति है। सहवास की स्वीकृति देने की उमर को कानून से बढ़ाने की कोशिश की जा रही है। कुछ अल्प-सख्यक लोगों के होश दुरुस्त करने के लिए यह ठीक हो सकता है, परन्तु कानून से कोई ऐसी सामाजिक कुप्रथा रोकी नहीं जा सकती है। इसे रोकनेवाला तो केवल जाग्रत लोक-मत ही है। ऐसे विषयों में कानून बनाने का मैं विरोध नहीं करता। परन्तु कानून से अधिक जोर मैं लोकमत तैयार करने पर अवश्य देता हूँ। मद्रास की ऐसी दुर्घटना होना असम्भव हो जाता, यदि वहाँ बाल-विवाह के विरुद्ध लोकमत जीता-जागता होता। मद्रास के इस मामले में वह युवक कोई अनपढ़ मजदूर नहीं है, वरन् पढ़ा लिखा बुद्धिमान टाईपिस्ट है। यदि लोकमत नाजुक उमर की लड़कियों के विवाह या पति-सहवास का विरोधी होता, तो उसके लिये उस लड़की से विवाह करना या सहवास करना असम्भव हो जाता। साधारणत १८ वर्ष से कम उमर की लड़की का विवाह कभी नहीं होना चाहिए।

बाल-विवाह के समर्थन में

एक सज्जन लिखते हैं :—

"२६ अगस्त सन् १९२६ के 'यंग इंडिया' में बाल-विवाह का सार शीर्षक आपके लेख को पढ़ कर मुझे बड़ा ही दुःख पहुँचा। कन्या के ऋतुमती होने के पूर्व लड़की का विवाह न करने में पाप लगता है—यह तो वे ही लोग कह सकते हैं जो कि आत्म-संयम से अनभिज्ञ हैं और जो पाप में डूबे पड़े हैं।"

"मेरी समझ में यह नहीं आता कि आप अपने से मुख़ालिफ़ राय रखनेवालों को औदार्य की दृष्टि से क्यों न देख सके। कोई यह अवश्य कह सकता है कि बाल-विवाह के शास्त्र-विहित ठहराने में मनु ने सरासर भूल की थी। परन्तु मैं यह कहना अनुचित मानता हूँ कि जो लोग बाल-विवाह पर दृढ़ हैं, वे पाप में डूबे पड़े हैं यह कहना विवाद की शिष्टता की सीमा का उल्लंघन हो जाता है। वास्तव में मैंने पहले-ही-पहल बाल-विवाह के विरुद्ध ऐसी दलील सुनी है। न तो हिन्दू समाज-सुधारकों ने और न ईसाई पादरियों ने, जहाँ तक मुझे मालूम है, कभी ऐसा कहा है। इसलिए जब मैंने इस दलील को महात्मा गाँधी की लेखनी से आया हुआ पाया, (महात्मा गाँधी, जिन्हें कि मैं प्रतिद्वन्द्वी के प्रति उदाहरण पूर्ण व्यवहार करने में सम्पूर्ण पुरुष मानता हूँ।) उस वक्त जो धक्का मुझे पहुँचा उसको जरा ख़याल कीजिए।

"आपने तो एक दो को नहीं, बल्कि प्रायः प्रत्येक हिन्दू-शास्त्रकार

को त्याज्य ठहराया है, क्योंकि जहाँ तक मुझे मालूम है, वहाँ तक प्रत्येक स्मृतिकार बाल-विवाह का आदेश देता है। और यह बात ठीक मानना जैसा कि आप फरमाते—हैं कि बाल-विवाह का आदेश देनेवाले सिर्फ क्षेपक मात्र हैं, असम्भव ही है। बाल-विवाह की रूढ़ि किसी खास सूबे या समाज-विशेष, में ही परिमित नहीं है, बल्कि भारतवर्ष-भर मे प्रचलित है और यह प्रथा रामायण के समय से चली आ रही है। मैं संक्षेप में यह बतलाने की चेष्टा करूँगा कि किन कारणों से हिन्दू-शास्त्रकार ने बाल-विवाह पर जोर दिया होगा। उन्होंने इसे स्पष्ट समझा कि साधारणतया प्रत्येक बालिका विवाहिता होनी चाहिये। यह लड़कियों के सुख और शान्ति के लिये मात्र नहीं है, वरन् साधारण तौर पर समाज के लिये भी। यदि प्रत्येक लड़की को विवाहित होकर रहना है, तो पति को पसन्द करने का काम लड़की के माता-पिता को न कि लड़की को स्वयं करना चाहिये। यदि यह काम लड़कियों पर छोड़ दिया जायगा तो नतीजा यह होगा कि बहुत सी लड़कियाँ बिना-ब्याही ही रह जायँगी। इसलिए नहीं कि उन्हें शादी पसन्द ही नहीं, बल्कि इसलिए की उन सबों को अपनी पसन्द का पति मिलना बहुत कठिन बात है। और यह खतरनाक भी है, क्योंकि इससे फिर आगे चलकर स्वैरण तथा भ्रष्टाचार फैल सकते हैं और वे युवक, जो कि ऊपर से अच्छे मालूम पड़ते हैं, सम्भव है कि भोली भाली लड़कियों के आचरण भ्रष्ट कर दें और यदि वर ढूँढने का काम माता पिता को करना है, तो लड़कियों की शादी उन में ही कर देनी होगी जब वह सयानी हो जाती हैं, तब वे किसी के

प्रेम-पाश में बँध जा सकती हैं और तब यह सम्भव है कि माता-पिता के द्वारा चुने हुए वर के साथ वे विवाह करना पसन्द न करें। जब लड़की का विवाह बचपन में कर दिया जाता है, तब वह अपने पति और पति के घर के साथ एक दिल हो जाती है। और तब पति के साथ उसका प्रेम अधिक स्वाभाविक और अधिक परिपूर्ण हो जाता है। कभी-कभी सयानी लड़कियों के लिए जिनके विचार और आदतें स्थिर हो जाती हैं, नये घर में पहुँच कर अपने को तदनुरूप बना लेना कठिन हो जाता है।

"बाल-विवाह के विरुद्ध यह दलील पेश की गयी है कि उससे लड़की तथा सन्तान की तन्दुरुस्ती कमजोर हो जाती है। परन्तु यह दलील निम्नलिखित कारणों से बहुत जबरदस्त नहीं है। आजकल हिन्दुओं में लड़की के विवाह की उम्र क्रमशः ऊँची होती चली जा रही है। लेकिन जाति कमजोर पड़ती जा रही है। ५० या १०० वर्ष के पुरुष और स्त्रियाँ आजकल की अपेक्षा साधारणतया अधिक दृढ़, स्वस्थ और चिरायु हुआ करती थीं परन्तु उन दिनों बाल-विवाह आज की अपेक्षा अधिक प्रचलित था। देर से ब्याही जाने वाली शिक्षित कन्याओं की तन्दुरुस्ती उन लड़कियों की तन्दुरुस्ती की अपेक्षा, जिन्होंने कम तालीम पायी है, और जिनका विवाह छुटपन ही में कर दिया गया था, अधिक अच्छी नहीं होती है। इन दृष्टान्तों से यह बहुत स्पष्ट मालूम होता है कि बाल-विवाह से शारीरिक अवनति उतनी नहीं हो जाया करती, जितना कि कुछ लोग समझते हैं।"

आपको यूरोपीय तथा भारतीय दोनों सभ्यता का अच्छी तरह ज्ञान है आप यह अन्दाज लगा सकते हैं कि सब बातों को देखते हुए हिन्दुस्तानी स्त्रियाँ अधिक पतिपरायण होती हैं या योरोप वाली कि योरोप वालों से हिन्दुस्तानी पति अपनी स्त्री के साथ दरियादिली का बर्ताव रखता है या योरोपियन, कि हिन्दुस्तानियों में क्लेशकारी विवाह बहुत कम होते हैं या योरोपियनों में और आया कि भारतीय समाज में विवाह सम्बन्धी आचार अधिक शुद्ध हैं कि योरोपीय में। यदि इन पहलुओं से यूरोपीय विवाह की बजाय कि हिन्दुस्तानियों के विवाह अधिक सफल हैं। तो बाल-विवाह को जो कि हिन्दुस्तानी विवाहों की एक विशेषता है बुरा न ठहराना चाहिए।

मैं यह नहीं मान सकता कि हिन्दू-शास्त्रकार बाल-विवाह का आदेश देते, समय समाज के सार्वजनिक कल्याण के सिवाय और किसी विचार से प्रेरित हुए थे। मैं समझता हूँ कि बाल-विवाह हिन्दू समाज के उन लक्षणों में से एक है कि जिनके द्वारा अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसकी शुद्धता कायम रही है, और जिन्होंने उसको छिन्न-भिन्न होने से बचाया है। शायद आप इन सबको सच न मानेंगे लेकिन हम यह आशा नहीं रख सकते कि आप अपनी उस धारणा को त्याग दें कि वे सब हिन्दू-शास्त्रकार, जिन्होंने कि कन्याओं के बाल-विवाह पर ज़ोर दिया है, आत्म-संयम शून्य थे और "प.प में डूब पड़े थे।"

मद्रास वाले वाले मुआमले का जो हवाला दिया है, वह का का ख्याल यह था कि उस लड़की ने आत्मघात कर

लिया था, लेकिन उस लड़की ने यह बयान दिया कि उसके पति ने उसके कपड़ों में आग लगा दी थी। इन परस्पर विरुद्ध बातों को देखते हुए यह मानना बहुत मुश्किल है कि जिन बातों को आप निर्विवाद मानते हैं, वे बातें सचमुच निर्विवाद हैं। १३ वर्ष से नीची उम्रवाली लाखों कन्याओं के विवाह हो चुके हैं, लेकिन पति की निर्दयतापूर्वक कामचेष्टा के कारण की हुई आत्महत्या का एक भी नजीर पहले सुनने में नहीं आयी। सम्भवतः इस मामले में कोई खास बातें थीं, जिनको हम जानते नहीं हैं और उस लड़की की मृत्यु का खास कारण बाल विवाह नहीं था।"

कविवर टैगोर ने ठीक कहा है—उन घटनाओं के आघात को जो छिपे हुए किसी की आत्मा को चोट पहुँचाती हैं, कम करने के निमित्त किसी मौजूँ फिलसफे के गढ़ देने में गाँठ से बहुत कम जाता है। 'यंग इंडिया' के ये 'पाठक' तो एक कदम और आगे बढ़ गये हैं। इन्होंने एक मौजूँ फिलसफे को ही नहीं गढ़ा है बल्कि हकीकतों को भी भुला दिया है और गैर सबूत वाले बयानात पर अपनी दलील उठा कर खड़ी कर दी है। अनुदारता वाले इलजाम के बारे में मैं कुछ लिखना नहीं चाहता यदि और किसी कारण से नहीं तो महज इसलिए ही कि मैंने शास्त्र-कारों पर दोषारोपण नहीं किया है बल्कि मैंने तो उन लोगों पर बुराई थोपी है जो कि मानुत्व भार न सम्भाल सकने वाली अवस्था में विवाह कर देने पर आग्रह करें, अनौदार्य का प्रश्न तो उठता है जब कि कोई अशुद्ध भाव का नाहक इलजाम किसी जीवित मनुष्य पर लगाये, न कि उसपर

योरोप में भी तो संयम सर्वत्र प्रचलित नहीं है और हजारों हिन्दू-कन्याओं का विवाह १५ वर्ष के बाद होता भी है और उनके माता-पिता ही उनके लिये वर पसन्द करते हैं। मुसलमान माँ-बाप तो हमेशा अपनी सयानी लड़कियों के खाविन्द खुद ही पसन्द करते हैं। यह पसन्दगी स्वयं लड़की करे या उसके माता-पिता यह बिलकुल दूसरी ही बात है और यह बात विवाह के अधिकार में है।

इस पत्र के लेखक ने इस बात के समर्थन में कोई सबूत पेश नहीं किया कि सयानी उम्र में ब्याही हुई कन्याओं की सन्तानें बालिकावस्था में विवाहिता स्त्रियों की औलादों से कमजोर होती हैं। भारतीय तथा योरोपीय दोनों समाजों के मेरे अनुभवों के होते हुए भी मैं उनके आचार की तुलना करना नहीं चाहता। बहस के लिए जरा देर को यदि मान भी लिया जाय कि योरोपीय समाज के आचार हिन्दू-समाज के आचार से निकृष्ट हैं, तो क्या उससे यही स्वाभाविक अनुमान हो सकता है कि यह निकृष्टता [illegible] के बाद शादी करने के कारण ही है।

अन्त में महाशयवाला मामला पत्रप्रेषक को कुछ मदद नहीं पहुँचाता है, प्रत्युत उनका उसे प्रयोग करना तो उनकी इबारत को [illegible] कर जल्दबाजी के साथ किसी नतीजे पर पहुँच जाना जाहिर करता है। अगर वे मेरे उस लेख को फिर उठा कर देखेंगे तो उन्हें पता चलेगा कि मैं अपने नतीजों पर साबितशुदा बातों से ही पहुँचा हूँ। मेरा निर्णय तो मृत्यु के कारण से जरा भी लगाव नहीं रखता, यह सिद्ध किया गया था कि —

हीं करेंगे तो इसमें कोई शक नहीं कि हम अपने-अपने धर्मों, अपने
श और राष्ट्रीय हित को नुकसान पहुँचावेंगे।

बाल-विवाह के भयानक परिणाम

बाल-विवाह-विरोधी कमेटी ने बाल-विवाह पर एक लाभदायक और
खोजपूर्ण नोट निकाला है। मैं उसके कुछ पैराग्राफ, जो विशेष महत्व
रखते हैं, दे रहा हूँ।

हिन्दुस्तान की १९११ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के अनुसार १५
वर्ष से कम अवस्था में निम्नलिखित संख्या लड़कियों में ब्याही गयी—

अवस्था	प्रतिशत विवाहित
०—	८
१—	१.७
२—	३.०
३—	४.३
४—	६.६
५—१	१६.१
१०—१	१८.१

इस प्रकार १०० पीछे लगभग एक लड़की १ वर्ष से कम अवस्था
में ब्याही गयी और यह भयानक बात १५ वर्ष के नीचे हर अवस्था में
होती रही।

(१) लड़की कमसिन थी।

(२) उसकी कामेच्छा तो थी ही नहीं।

(३) उसके पति ने काम-चेष्टा में ज़बरदस्ती ज़रूर की।

(४) वह लड़की अब इस संसार में नहीं।

लड़की ने यदि आत्मघात किया तो बुरा किया, लेकिन
उसके पति ने बलात्कार मार डाला—चूँकि वह उसकी पशु
सन्तुष्ट न कर सकी, तो और भी बुरा हुआ। उस लड़की की
तो खेलने और सीखने पढ़ने की थी—न कि पत्नी का बर्ताव
और अपने नाज़ुक कन्धों पर गृहस्थी का भार उठाने की या "
की गुलामी करने की।

ये लेखक समाज में एक प्रतिष्ठित पुरुष हैं। भारत-माता अ
लड़के और लड़कियों से अधिक अच्छी बातों की आशा रखती है
उदार शिक्षा पाई है और जिनसे राष्ट्र के लिए ही सोचने-समझने
कार्य करने की आशा रखी जाती है। हममें बहुत-सी बुराइयाँ मौजू
वे नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सब ही प्रकार
उनके लिए धैर्ययुक्त अध्ययन, सपरिश्रम अनुसन्धान और सावध
काम करने की जरूरत है। बयान में सत्य और उस पर विचा
समय स्वच्छ विचार की जरूरत तथा गाम्भीर्य-पूर्ण और निष्पक्ष
भी दरकार हैं और तब हम यदि जरूरी हो, तो आपस में जमीन
मान का मत-भेद रख सकते हैं परन्तु यदि हम सचाई को गहर
पहुँचाने की और फिर चाहे जो हो जाय उसपर डटे रहने की

नहीं करेंगे तो इसमें कोई शक नहीं कि हम अपने-अपने धर्मों, अपने देश और राष्ट्रीय हित को नुकसान पहुँचावेंगे।

बाल-विवाह के भयानक परिणाम

बाल-विवाह-विरोधी कमेटी ने बाल-विवाह पर एक लाभदायक और खोजपूर्ण नोट निकाला है। मैं उसके कुछ पैराग्राफ, जो विशेष महत्व रखते हैं, दे रहा हूँ।

हिन्दुस्तान की १६११ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के अनुसार १५ वर्ष से कम अवस्था में निम्नलिखित संख्या लड़कियाँ में ब्याही गयीं—

अवस्था	प्रतिशत विवाहित
०—	८
१—	१ २
२—	२ ०
३—	४ २
४—	६ ६
५—१	१६ ३
१०—१	१८ १

इस प्रकार १०० पीछे लगभग एक लड़की १ वर्ष से कम अवस्था में ब्याही गयी और यह भयानक बात १५ वर्ष के नीचे हर अवस्था में होती रही।

नहीं करेंगे तो इसमें कोई शक नहीं कि हम अपने-अपने धर्मों, अपने देश और राष्ट्रीय हित को नुकसान पहुँचावेंगे।

बाल-विवाह के भयानक परिणाम

बाल-विवाह-विरोधी कमेटी ने बाल-विवाह पर एक लाभदायक और खोजपूर्ण नोट निकाला है। मैं उसके कुछ पैराग्राफ, जो विशेष महत्व रखते हैं, दे रहा हूँ।

हिन्दुस्तान की १९३१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के अनुसार १५ वर्ष से कम अवस्था में निम्नलिखित संख्या लड़कियाँ में ब्याही गयीं—

अवस्था	प्रतिशत विवाहित
०—	.८
१—	१·२
२—	२·४
३—	४·२
४—	६·६
५—९	१९·३
१०—१४	३८·१

इस प्रकार १०० पीछे लगभग एक लड़की ५ वर्ष से कम अवस्था में ब्याही गयी और यह भयानक बात १५ वर्ष के नीचे हर अवस्था में होती गयी।

(१) लड़की कमसिन थी ।

(२) उसकी कामेच्छा तो थी ही नहीं ।

(३) उसके पति ने काम-चेष्टा में जबरदस्ती जरूर की ।

(४) वह लड़की अब इस संसार में नहीं ।

लड़की ने यदि आत्मघात किया तो बुरा किया, लेकिन यदि उसे उसके पति ने जलाकर मार डाला—चूँकि वह उसकी पशु-वृत्ति को सन्तुष्ट न कर सकी, तो और भी बुरा हुआ। उस लड़की की वह उम्र तो खेलने और सीखने पढ़ने की थी—न कि पत्नी का बर्ताव करने की और अपने नाजुक कन्धों पर गृहस्थी का भार उठाने की या "स्वामी" की गुलामी करने की ।

ये लेखक समाज में एक प्रतिष्ठित पुरुष हैं । भारत-माता अपने उन लड़के और लड़कियों से अधिक अच्छी बातों की आशा रखती है जिन्होंने उदार शिक्षा पाई है और जिनसे राष्ट्र के लिए ही सोचने-समझने तथा कार्य करने की आशा रखी जाती है । हममें बहुत-सी बुराइयाँ मौजूद हैं—वे नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सब ही प्रकार की हैं। उनके लिए धैर्ययुक्त अध्ययन, सपरिश्रम अनुसन्धान और सावधानी से काम करने की जरूरत है । बयान में सत्य और उस पर विचार करते समय स्वच्छ विचार की जरूरत तथा गाम्भीर्य-पूर्ण और निष्पक्ष निर्णय भी दरकार हैं और तब हम यदि जरूरी हो, तो आपस में जमीन-आसमान का मत-भेद रख सकते हैं परन्तु यदि हम सचाई को गहराई तक [illegible] और फिर चाहे जो हो जाय [illegible] की कोशिश

नहीं करेंगे तो इसमें कोई शक नहीं कि हम अपने-अपने धर्मों, अपने देश और राष्ट्रीय हित को नुकसान पहुँचावेंगे।

बाल-विवाह के भयानक परिणाम

बाल-विवाह-विरोधी कमेटी ने बाल-विवाह पर एक लाभदायक और खोजपूर्ण नोट निकाला है। मैं उसके कुछ पैराग्राफ, जो विशेष महत्व रखते हैं, दे रहा हूँ।

हिन्दुस्तान की १६३१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के अनुसार १५ वर्ष से कम अवस्था में निम्नलिखित संख्या लड़कियाँ में ब्याही गयी—

अवस्था	प्रतिशत विवाहित
०—	८
१—	१·२
२—	२·०
३—	४·२
४—	६·६
५—१	१६·३
१०—१	१८·१

इस प्रकार १०० पीछे लगभग एक लड़की १ वर्ष से कम अवस्था में ब्याही गयी और यह भयानक बात १५ वर्ष के नीचे हर अवस्था में होती रही।

विरत सन्तानोत्पत्ति समाप्त होने के पूर्व ही सन्तानोत्पत्ति में मर जाती हैं। माताओं की मृत्यु का हमारे पास कोई सही तादाद नहीं, परन्तु भारत में हर हजार में २४.५ होती है जब कि इङ्गलैंड में केवल ४.५।

शरीर से बाल-विवाह से माँ के ऊपर ही बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि बच्चे पर भी और इस प्रकार जाति पर भी पड़ता है। हमारे देश में हर १००० पैदा हुए बच्चों पर १८१ मर जाते हैं। यह तो औसत में ऐसी जगहें है, जहाँ औसत १०० पीछे ४०० तक पहुँच जाता है। इस मामले में यहाँ की पिछड़ी हुई हालत का पता जापान या इङ्गलैंड की शिशु मृत्यु की सरकारी रिपोर्ट से मिलान करने पर स्पष्ट हो जाती है, जहाँ यह २४ प्रति तथा ६० प्रतिशत ही है। इस बात को देखते हुए यह प्रथा बन्द की जा सकती है, यह बड़ा भयानक भी है और हमारा अशिक्षित समाज ही इस बुराई के बढ़ाने का उत्तरदायी है।

सबसे दुःख की बात तो यह है कि इस दिशा में वृद्धि हो रही है। उदाहरण के लिए १९२१ ई० में १ साल से कम अवस्था की ९०६६ पत्नियाँ थीं। १९३१ ई० में यह संख्या ४४०८२ हो गई इस प्रकार ५ गुनी बढ़ती हो गयी और आबादी केवल दसवाँ हिस्सा ही बढ़ी। फिर १९२१ में एक वर्ष से कम अवस्था वाली ७५९ विधवाएँ थीं और १९३१ में १५१५ हो गई लगातार गणना देखने से बड़ी आश्चर्यजनक बात मिलती है। इस प्रकार की बुराइयों के घटने की अपेक्षा आबादी कहीं अधिक गति से बढ़ती जा रही है। अतएव इनके रोकने की आजकल की तरह शायद कभी जरूरत रही हो और सरकार को इस विषय में सचेत करने तथा

समाज को जगाने में अधिक महत्वशाली एवं अ
कार आम तौर महिला-आन्दोलन के लिये नहीं हो सक

इस प्रथा को देख कर हमारा सिर लज्जा से
परन्तु इससे यह बुराई दूर नहीं होगी। कम-से-कम
देहातों में इसी प्रकार फैला है, जैसे शहरों में। इस
विशेषकर स्त्रियों का ही है। इसमें कोई सन्देह नह
अपना भाग पूरा करना है लेकिन जब कोई पुरुष
कर लेता है, तो वह तर्क की परवाह नहीं करता। मात
बच्चे तथा उनके कर्तव्यों के प्रति जाग्रत करने की आ
वे ऐसे बुरे कार्यों से इन्कार कर दें। यह स्त्रियों के
कर सकता है? अतएव मैं समझता हूँ कि अखिल
संस्था को अपने उद्देश्य में सफल होने के लिए देहात
ये नोट बड़े मूल्यवान हैं और वे कुछ पढ़े-लिखे अंग्रे
में ही, रहनेवालों तक पहुँचते हैं। इसके लिए तो देहा
व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता है।
स्थापित हो जाय तो भी काम सहल नहीं हो जायगा
इस प्रकार के परिणाम के लिए ऐसे काम करने ही पड़े
भारतीय महिला-संघ और अखिल भारतीय वी० आई
का सहयोग करेंगे।

किसी भी गाँवों में काम करनेवाले स्त्री या पुरुष
त्रिक सुधार के लिये देहात में आने की आवश्यकता ना

के हर क्षेत्र से सम्पर्क रखना होगा, मैं फिर दुहराना चाहता हूँ कि देहात में काम करने का तात्पर्य पढ़ना-लिखना या हिसाब-किताब की ही शिक्षा नहीं, बल्कि देहात के लोगों में सच्चे जीवन की आवश्यकताओं की शिक्षा देना तथा उन्हें इस योग्य बनाना है कि वे चेतन प्राणी कहे जा सकें।

असहाय विधवाएँ

एक दुखी मित्र ने एक दर्द-भरा पत्र भेजा है, जिसमें उन्होंने एक १७ साल की लड़की के बारे में लिखा है कि छोटे से भूकम्प में जिसके पति, दो माह के बच्चे, ससुर और पति के छोटे भाई का देहान्त हो गया, यानी ससुराल के सारे परिवार का नाश हो गया है। मेरे संवाददाता लिखते हैं कि वह सुरक्षित बच निकली थी और केवल अपने शरीर पर कपड़ों के साथ वापस आयी। वह उनके चचा की लड़की है और उन्हें यह समझ नहीं पड़ता कि वह उसे कैसे बहलायें या उसे क्या करें। उसे स्वयं भी कुछ चोट आयी है। पैरों में आघात पहुँचा है, और भाग्यवश हड्डियाँ ठीक स्थान पर हैं। संवाददाता ने आखिर में लिखा है :—

"मैंने उसे उसकी माँ के पास लाहौर में छोड़ दिया है। मैंने नि-धा में उससे और सम्बन्धियों से उसके पुनर्विवाह का जिक्र किया। बुढ़ों ने तो मेरी बात सहानुभूति-पूर्वक सुनी, परन्तु छोटों ने मेरे प्रस्ताव

के प्रति घृणा प्रकट की। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बहुत-सी लड़कियों ने इस प्रकार का कष्ट सहन किया होगा। क्या आप इन विधवाओं के प्रोत्साहन के लिये कुछ शब्द कहेंगे?"

मुझे मालूम नहीं, जिन विषयों में युगों से प्रचलित निषेधों का सम्बन्ध हो, मेरी लेखनी या मेरी वाणी क्या कर सकेगी? मैंने कई बार कहा है विधवा स्त्री को पुनर्विवाह का उतना ही अधिकार है, जितना पुरुष को। स्वेच्छा से वैधव्य हिन्दू-समाज का अमूल्य वरदान है, परन्तु ऊपर से लादा हुआ वैधव्य अभिशाप है। और मुझे विश्वास है कि हिन्दू विधवायें जनमत के भय से मुक्त हों, तो वे बिना हिचक के पुनर्विवाह कर लेंगी। अतः सभी विधवाओं को जो इस क्वेटा वाली बहन की परिस्थिति में हों, उन्हें पुनर्विवाह के लिये राजी करना चाहिये और उन्हें विश्वास दिलाया जाना चाहिये कि पुनः विवाह कर लेने पर उनके विरुद्ध कोई अपमान-जनक बात न कही जायगी तथा उनके लिये उचित वर ढूँढ़ देना चाहिये। यह किसी संस्था का काम नहीं, बल्कि व्यक्तिगत सुधारकों तथा इन विधवाओं के सम्बन्धियों द्वारा किया जानेवाला कार्य है। उन्हें अपने क्षेत्र में शक्तिशाली प्रचार करना चाहिये और जब वे सफल हों, उसको ज्यादा-से-ज्यादा लोगों के निगाह में लाना चाहिये। केवल इसी प्रकार भूकम्प में विधवा हुई लड़कियों को उचित सहायता दी जा सकती है। शोक की स्मृति बनी रहने पर भी लोगों की सहानुभूति प्राप्त की जा सकती है और एक बार भी विस्तृत रूप से सफल हो जाने पर जो लड़कियाँ स्वाभाविक रूप से विधवा

आरोपित वैधव्य

प्यारे लाल ने स्त्रियों के डार्लिंगटन की 'पुनिशमेंट हिस्ट्री' से वैधव्य का निम्नलिखित उद्धरण दिया है, जो जूलियस सीजर के समय में हुआ था।

"ब्राह्मणों में यह प्राचीन नियम था कि जब युवक और युवतियाँ विवाह करना चाहते थे तो वे माता-पिता के निर्णय के अनुसार विवाह नहीं करते थे, बल्कि अपनी ही स्वीकृति से। लेकिन जब कम अवस्था वालों में विवाह होता था तो प्रायः पारस्परिक स्वीकृति और निर्णय अनुचित सिद्ध होते थे और दोनों ओर से अपने सम्बन्ध पर पश्चात्ताप करने के बाद बहुत सी स्त्रियों का आचरण गिर जाता था और वे दूसरे पुरुषों से प्रेम करने लगती थीं। फिर जब वे अपने पति को छोड़कर उनसे विवाह करना चाहतीं, जैसा कि विष देकर अपने को मुक्त कर लेती थीं। जो लोगों को मारने का एक दृढ़ और विष उनके देश में, जहाँ कि इस तरह की तमाम प्राणान्तक वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, बड़ी सुगमता से मिल जाता था। इन वस्तुओं में बहुत सी ऐसी होती हैं कि उनका चूर्ण भोजन या पीने की चीजों में डाल देने से ही मृत्यु हो जाती है। किन्तु जब यह मामला बहुत बढ़ गया और बहुत से लोग मौत के शिकार हो चुके और जब किसी स्त्री को दण्ड देने से दूसरी स्त्रियों पर कोई प्रभाव न पड़ता, तो उनके यहाँ यह नियम बनाया गया कि यदि कोई स्त्री गर्भवती या बच्चे वाली न हो, तो उसे मृत-पति के साथ जीवित जला दिया जाय। और

बीसवीं सदी की सती

घाटकोपर से एक बहिन लिखती हैं —

"बम्बई समाचार" के ता० २३ अप्रैल के अंक में प्रकाशित बीसवीं सदी की लुहाणा जाति की सती की बात सच हो, तो उस बहिन की पति-भक्ति वन्दनीय है। इस कार्य के सम्बन्ध में अपनी राय नवजीवन द्वारा प्रकट करेंगे, तो विशेष जानकारी हासिल होगी।

मुझे आशा है, यह समाचार सच नहीं है। अगर वह बहन मरी है तो किसी रोग से या आकस्मिक घटना से मरी है, आत्महत्या करके नहीं। बीसवीं सदी या किसी दूसरी भी शताब्दि की सती के लक्षण एक ही प्रकार के होने चाहिएँ। सती वह है जो पति के जीवित रहते और उसकी मृत्यु के बाद सेवा-परायण रह कर सेवा करे और मन से, वचन से तथा कर्म से निर्विकार रहे। पति के पीछे आत्महत्या करने में ज्ञान नहीं, अज्ञान है। ऐसा करने में बड़ा अज्ञान तो आत्मा के गुण के विषय में है। आत्मा-मात्र अमर तथा सर्वव्यापक है। एक देह के छूटने पर दूसरा देह निर्माण करती है। और यों करते-करते अन्त में देहातीत हो जाती है। यह बात सच है, अनुभव-सिद्ध है। और आज अनुभव-गम्य है। ऐसी दशा में पत्नी के पति के साथ मरने से क्या लाभ?

और विवाह शरीर का नहीं, आत्मा का है। अगर विवाह शरीर ही का हो, तो पति के मरने पर मोम के पुतले या पोथे से ही संतोष क्यों न कर लिया जाय। अगर विवाह एक विशेष शरीर धारी जीव के साथ

का ही सम्बन्ध है, तो उस शरीर के नष्ट होने पर विवाह का भी अन्त हो जाता है। और आत्महत्या करने से वह शरीर पुन मिल नहीं सकता। एक के नाश के साथ दूसरे शरीर का नाश करना तो "दोनों दीन से गये पाण्डे" वाली मसल को चरितार्थ करना है।

विवाह शरीर द्वारा आत्मा का होता है और एक आत्मा की भक्ति से अनेक आत्मा की अर्थात् परमेश्वर की भक्ति सिद्ध करने की कला सीखने का भेद विवाह में छिपा हुआ है। इसी कारण अमर मीरा मर चुकी है —

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई' यानी सती स्त्री की दृष्टि में विवाह-विकार तृप्त करने का साधन नहीं होता, बल्कि 'एक की दवा दो' इस न्याय से प.त में लीन होकर सेवा-शक्ति बढ़ाने का साधन है।

इसलिए सच्ची सती अपना सतीत्व सप्त-पदी के समय से ही सिद्ध करती है। वह साध्वी बनती है, तपस्विनी बनती है। पति की, कुटुम्ब की और देश की सेवा करती है। वह घर-गृहस्थी मे फँस जाने और भोग भोगने के बजाय अपना ज्ञान बढ़ाती है। त्याग-शक्ति बढ़ाती है। और पति में लीन होकर जगत-मात्र में लीन होनी सीखती है।

ऐसी सती-पति की मृत्यु पर दु ख नहीं करती, पागल नहीं बनती, बल्कि पति के समस्त सद्गुणों को वह अपने में प्रकट करेगी, और उसे अमर बनायेगी। और यह सोचकर कि सम्बन्ध आत्मा से था, वह फिर से ब्याह करने का विचार तक न करेगी।

पाठक देखेंगे कि मेरी कल्पना की सती विवाह के आरम्भ से ही

निर्विकार है, इसलिए वह सन्तान उत्पन्न न करेगी। विषय-भोग न करेगी। ऐसी सती विवाह-बन्धन में बँधे क्यों? कोई यह सवाल पूछे, तो वह उचित होगा। परन्तु हिन्दू-संसार में विवाह के बारे में स्त्री या पुरुष की पसन्द का कोई सवाल ही नहीं होता और आजकल के इस भले-बुरे सुधारों के युग में कुछ लोग संयम के हेतु से ब्याह करते हैं। मैं कबूल करता हूँ कि इसके मूल में सूक्ष्म मूर्च्छा-मोह है। फिर भी कुछ ऐसे पाये जाते हैं, जो निर्विकार रहने का निश्चय करके सम्बन्ध जोड़ते हैं। ऐसा एक उदाहरण मुझे अपने अनुभव से इस समय याद आ रहा है। विवाह करते समय भोग की इच्छा थी, परन्तु बाद में संयम-वृत्ति के प्रबल होते ही निर्विकार जीवन बिताने का प्रयत्न करने वाले दम्पति के एक से ज्यादा उदाहरण मेरी आँखों के सामने इस वक्त तैर रहे हैं। अतः पाठक यह न समझें कि मेरी कल्पना को इतिहास में कहीं स्थान ही नहीं है।

परन्तु साधारण विवाह का विचार करें तो सती स्त्री की जिन शक्तियों को ऊपर गिना चुका हूँ, उनमें प्रजा-पालन की शक्ति का बढ़ाना होगा। यानी सती स्त्री मर्यादा में रह कर सन्तान की उत्पत्ति के बारे में भाग लेगी और बालक या बालिका का उचित प्रकार से लालन-पालन करके उन्हें सुशिक्षित बनाकर देश के सेवा-धन में वृद्धि करेगी।

जो बातें ऊपर मैं सती स्त्री के विषय में कह चुका हूँ, वे सत-पति के लिए भी लागू होती हैं, अगर स्त्री को पति के प्रति सतीत्व सिद्ध करना आवश्यक है। हमने स्त्री के साथ पति को जलते हुए नहीं सुना

इसलिये हम यह मान लेते हैं कि पति के साथ पत्नी के जल मरने की प्रथा जारी कब शुरू हुई हो, वह अज्ञान-मूलक है और किसी समय उसमें कुछ महत्त्व था, ऐसा साबित हो सके, तो भी इन दिनों तो उसमें घोर अज्ञान ही है। इस सम्बन्ध में कोई भी बहन अपने मन में सन्देह न करे। स्त्री पति की दासी नहीं, उसकी सहचारिणी है, अर्द्धांगिनि है, मित्र है, इसी लिए उसके साथ बराबर हक भोगनेवाली है, उसकी सहधर्मिणी है। इस कारण एक-दूसरे के प्रति और जगत् के प्रति दोनों के प्रति दोनों के कर्तव्य समान ही हैं।

अतएव अगर उक्त लुहाणा बहन मरी हो, तो उसने व्यर्थ ही आत्म-हत्या की है। वह जरा भी अनुकरणीय नहीं। कोई कहेगा कि उसके मरने की क्षमता की स्तुति तो करें? मेरा मन वैसा करने से भी इन्कार करता है। क्योंकि दुष्ट कर्म करनेवाले में भी करने की शक्ति हम देखते हैं। परन्तु उस शक्ति की स्तुति करने का धर्म हम स्वीकार नहीं करते। ऐसी दशा में इस अज्ञान बहन के मरने की स्तुति करके भ्रम में पड़ी हुई बहनों को अनजान में भी भ्रम में डालने का पाप मैं क्यों अपने सिर लूँ? सतीत्व के मानी हैं—पवित्रता की पराकाष्ठा। यह पवित्रता आत्महत्या करके सिद्ध नहीं की जा सकती। जीकर उसका कठोर पालन किया जाना चाहिए।

आदर्शों का दुरुपयोग

बाल-विधवाओं के पुनर्विवाह पर मेरे पास आये हुए एक पत्र में से मैं निम्नलिखित अंश उद्धृत करता हूँ —

“२३ वीं सितम्बर के यंग इंडिया” में आगरे के (वी) महोदय के पत्र के उत्तर में कहा है कि बाल-विधवाओं के माता-पिता को चाहिए कि वे उनका पुनर्विवाह कर दें। यह बात उन लोगों के बारे में कैसे सम्भव है, जो कि कन्यादान करते हैं, यानी जो शास्त्रोक्त विधि से अपनी कन्याओं का विवाह करते हैं? निश्चय ही यह उन माता पिताओं के लिये असम्भव है, जिन्होंने अपनी पुत्री पर अपने सम्पूर्ण हक संजीदगी के साथ और धार्मिक रीति से दामाद को सौंप दिये हैं कि वे उसकी मृत्यु के पश्चात् दूसरे व्यक्ति के साथ उसका विवाह कर दें। अगर वे चाहें तो स्वयं पुनर्विवाह कर सकती हैं, लेकिन वह चूँकि अपने माता-पिताओं द्वारा दामाद को दान-स्वरूप दी गयी थी, इसलिए उनका पुनर्विवाह करने का हक संसार में किसी को भी प्राप्त नहीं है। और इसी वजह से उस बाल-विधवा को भी अपना पुनर्विवाह करने का कोई हक नहीं है। इसलिए अपने पति से उसकी मृत्यु के समय स्पष्ट आज्ञा पाये बिना अगर वह अपना पुनर्विवाह करती है, तो वह अपने परलोक वासी पति के साथ विश्वासघात करती है, और उसे धोखा देती है। अतएव तर्क की दृष्टि से ऐसी विधवा के लिए पुनर्विवाह करना अशक्य है, चाहे वह बालिका हो या युवती या वृद्ध जिसका कि विवाह “कन्यादान” प्रथा

नि:सन्देह कन्यादान एक रहस्यमय धार्मिक प्रथा है, जो कि आध्यात्मिक महत्व रखता है। ऐसे शब्दों का बिलकुल शाब्दिक अर्थ में ही प्रयोग करना भाषा और धर्म का दुरुपयोग करना है। अगर उन शब्दों के अर्थ लगाने में उदारता से काम नहीं लिया जाता, तो पुराणों की विचित्रता का भी इसी प्रकार अर्थ किया जा सकता है—जैसे पृथ्वी चपटी थाली के मानिन्द है, जिसे कि सहस्र फन वाले शेषनागजी थामे हुए हैं और नारायण क्षीर-सागर में उन्हीं शेषनाग की शय्या पर आनन्द से शयन कर रहे हैं।

जिस माता-पिता ने अपनी नन्हीं बच्ची का प्यार के कारण किसी बूढ़े को या किसी १६-१७ वर्ष के बालक को ब्याह दिया है, कम-से-कम उस माता-पिता का कर्तव्य यह है कि वे अपनी उस बच्ची का विवाह उसके विधवा होने पर करके पाप से मुक्त हों, जैसा कि मैं किसी पिछले अंक में अपनी टिप्पणी में कह चुका हूँ। ऐसी शादियाँ शुरू से ही रद्द मानी जानी चाहिएँ।

विधवाओं का पुनर्विवाह

एक मित्र ने अपने विचारों का स्पष्टीकरण किया है :—

"आप हमारी विधवाओं के विषय में कुछ प्रभावशाली बात क्यों नहीं कहते हैं ? उनके कट्टर संरक्षक या माता-पिता तर्क की कभी परवाह न करेंगे। विधवाओं को ही कदम बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित क्यों न किया जाय ? और फिर हमारे यहाँ बहुत-सी सामाजिक कुरीतियाँ हैं जैसे, दहेज की प्रथा, विवाह और मृत्यु के पश्चात् दिये जानेवाले भोज इत्यादि।"

विधवा-विवाह कुछ सीमा तक आवश्यक है। और यह सुधार तभी हो सकता है, जब कि हमारे युवक अपने को पवित्र कर लें। क्या वे पवित्र हैं ? या उनकी शिक्षा को क्यों दोष दें ? हमारे भीतर बचपन से ही गुलामी की भावना भरी जाती है। और जब हम स्वतंत्र होकर सोच नहीं सकते तब स्वतन्त्र होकर कार्य कैसे कर सकेंगे ? हम साथ-ही-साथ जाति, विदेशी शिक्षा तथा विदेशी सरकार के गुलाम हैं। हमारे लिए जो भी सुविधा दी गयी है, वह हमारी जंजीर है। हमारे भीतर बहुत से शिक्षित युवक हैं, परन्तु उनमें से कितनों ने आत्म-विश्वास प्राप्त किया है और जाति की कुरीतियों के विरुद्ध लड़े हैं ? अपने घरों में कितनों ने विधवाओं की बात सोची है ? कितनों ने अपनी वासना संयमित की है ? कितने ऐसे हैं, जो उन्हें माँ-बहन की तरह मानकर उनकी रक्षा करते हैं ? बेचारी विधवा-स्त्री किसके पास जाय ? मैं उसे क्या आश्वासन दे सकता हूँ ? उनमें से कितनी हैं, जो 'नव-जीवन' पढ़ती हैं ? कितनी

ऐसी पढ़ने वाली हैं, जो उसे पढ़कर अमल कर सकती हैं। फिर भी 'नवजीवन' में मैंने विधवाओं के विषय में लिखा है और आशा करता हूँ कि अवसर मिलते रहने पर लिखता रहूँगा। तबतक मैं ऐसे लोगों से अपील करता हूँ, जिनके संरक्षण में कोई बाल-विधवा है कि उसका पुनर्विवाह करना अपना कर्तव्य मानें।

संवाददाता ने हमारे समाज पर धुँधला प्रकाश डाला है। परन्तु जब समूचा ढाँचा ही उखड़ा हो, तो कुछ यहाँ-वहाँ के टुकड़ों से हमें कैसे संतोष हो सकता है? देहान्त के पश्चात् का भोज असभ्यतापूर्ण होता है और विवाह के पश्चात् का उससे कम नहीं होता है। विवाह के पश्चात् दिये गये भोज को हम कम असभ्यतापूर्ण इसलिए अवश्य मान सकते हैं कि सारे संसार में विवाह का धार्मिक संस्कार कुछ कमी-बेशी के साथ मनौता होता है। परन्तु मरने के बाद भोज की प्रथा केवल हिन्दुओं ने अपना रखी है। इसकी और इस तरह की दूसरी बातों की ओर ध्यान देना परमावश्यक है। परन्तु पूर्ण सुधार तो तभी होगा, जब हमारी जनता में चेतनापूर्ण जाग्रति हो और उनमें विचारों के [illegible] हो। जबतक हमारे स्वतन्त्र कार्य-विचार और इस तरह टुकड़े टुकड़ी के सुधार निरर्थक-से नहीं होते, दूर होंगे।

दलित मनुष्य जाति

मनुष्यों में केवल अस्पृश्य ही ऐसे नहीं हैं, जिन पर अत्याचार
है। हिन्दू-समाज में अल्पवयस्का विधवा पर भी कुछ कम अत्याचार
होता है। बंगाल से एक सज्जन लिखते हैं—

"मुसलमानों में विधवा-विवाह की कोई मनाही नहीं है। बल्कि
पुरुषों को चार स्त्रियों से भी विवाह करने का हक है। सच पूछो, तो
अधिकांश मुसलमानों को अनेक पत्नियाँ होती हैं। इस प्रकार एक भी
मुसलमान पुरुष अविवाहित नहीं रह जाता है। तो यह क्या सच नहीं
है कि जहाँ विधवा-विवाह की कुछ रोक नहीं है, पुरुषों से स्त्रियों की
संख्या वहाँ अधिक होती है, या दूसरे शब्दों में यों कहिये कि जिस समाज
में विधिवा-विवाह प्रचलित है, उसमें क्या बहुपत्नीत्व का भी अधिकार
देना ही चाहिये। हिन्दुओं में विधवा-विवाह का यदि प्रचार हो जाय, तो
नवयुवती विधवाएँ क्या युवकों को लुभाकर उनसे विवाह न कर लेंगी। और
कुमारियों के लिए वर ढूँढ़ना क्या कठिन वरन् असम्भव ही नहीं हो
जायगा! तो फिर आज जो पाप विधवाएँ करती हैं, या जिनका दोष उन्हें
लगाया जाता है, वे ही पाप क्या वे कुमारियाँ भी नहीं करेंगी, अगर
हमने हिन्दुओं को एकाधिक विवाह करने का अधिकार नहीं दिया। मैं
जानबूझ कर प्रेम की, पुण्यमय गृहस्थी की, पतिव्रत-धर्म की वा ऐसी
और बातों की याद दिलाना नहीं चाहता, जिनका विचार विधवा-विवाह
का समर्थन करते समय करना होगा।

विधवाओं का विवाह रोकने के उत्साह में पत्र-लेखक ने जितना ही

बातों की उपेक्षा कर दी है। मुसलमानों को एकाधिक पत्नी रखने का अधिकार है सही, परन्तु अधिकांश मुसलमानों को एक ही पत्नी है। मालूम होता है कि, शायद पत्र-लेखक को इसका पता नहीं है कि दुर्भाग्यवश हिन्दुओं में बहुपत्नीत्व की मनाही नहीं है। ऊँची से ऊँची श्रेणी के हिन्दुओं ने अनेक स्त्रियों से विवाह किया है। बहुत राजाओं ने न मालूम कितने विवाह किये हैं। पत्र-लेखक यह बात भूलते हैं कि केवल ऊँची श्रेणी के हिन्दुओं में ही विधवा-विवाह मना है। सबसे नीची श्रेणी के बहुसंख्यक लोगों में विधवाएँ आमतौर पर पुनर्विवाह करती हैं और कभी उससे बुरा परिणाम नहीं हुआ है। यद्यपि उन्हें एक से अधिक पत्नियों से विवाह करने की पूरी स्वतन्त्रता है, परन्तु साधारणतः वे एक समय में एक ही सहचरी से सन्तुष्ट रहते हैं।

इस विचार से कि विधवाएँ सभी युवकों पर कब्जा कर लेंगी, और कुमारियों के लिए वर नहीं मिलेंगे, पत्र-लेखक में विवेक के अत्यन्त अभाव का पता लगता है। नवयुवती लड़कियों की पवित्रता के विषय में इतनी चिन्ता से लेखक के ही रोगी दिमाग का परिचय मिलता है। पुनर्विवाह करनेवाली थोड़ी विधवाएँ कभी भी बहुत कुमारियों को अविवाहित नहीं छोड़ देंगी। खैर, यदि कभी यह समस्या उपस्थित भी होगी, इसका कारण आज का बाल-विवाह ही होगा। इसकी समुचित दवा तो बाल-विवाह की रोक ही कही जा सकती है।

कम उमर की विधवा के विषय में प्रेम, गृहस्थ-जीवन की पवित्रता आदि बातों का नाम न लेना ही अच्छा होगा।

परन्तु पत्र-लेखक ने मेरा मतलब बिलकुल ही नहीं समझा है। मैंने सभी विधवाओं के विवाह का समर्थन कभी नहीं किया है। सर गंगा राम के ढूँढ़े हुए अंक, जिनका इस पत्र में साराश दिया गया है, १५ वर्ष के उमर की विधवाओं का है। ये गरीब दुखिया पतिव्रत-धर्म को क्या जानें? प्रेम उनके लिए अज्ञात वस्तु है। सच्ची बात तो यह कहनी होगी कि उनका विवाह कभी हुआ ही नहीं था। विवाह को अगर सचमुच ही धार्मिक संस्कार बनाना है, इसके द्वारा एक नये जीवन में प्रवेश करना है, तो जिनका विवाह होता है, उन लड़कियों को खूब उन्नति करने देना चाहिये। जीवन-भर के लिए साथी को चुनने में उनका भी कुछ हाथ होना चाहिये और वे जो काम करने जा रही हैं, उसका फलाफल ही उन्हें समझना चाहिये। ईश्वर के दरबार में और मनुष्य के सामने हम पाप करते हैं, अगर हम बच्चों के संयोग को विवाह का नामधारी पति के मर जाने पर उस बालिक के लिए आजीवन वैधव्य का दण्ड देते हैं!

मेरा विश्वास है कि सच्ची हिन्दू-विधवा एक रत्न है। मनुष्य जाति को हिन्दू-धर्म की वह एक भेंट है। रामाबाई रानडे ऐसी ही भेंट थीं परन्तु बाल-विधवाओं का अस्तित्व हिन्दू-धर्म के ऊपर एक कलंक है, जिसके लिए एक रमाबाई कुछ प्रायश्चित स्वरूप नहीं हो सकतीं।

बाल-पत्नियाँ और बाल-विधवाएँ

मद्रास के पचिअप्पा कालेज में भाषण देते हुए गांधीजी ने कहा—एक विद्वान तामिल ने मुझे लिखा है कि मैं विद्यार्थियों से बाल विधवाओं के विषय में कुछ कहूँ। उसका कहना है कि हमारी प्रेसिडेन्सी में दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा बाल-विधवाओं की कहीं बुरी दशा है। मैं इस बात की सचाई अभी तक नहीं जान सका हूँ। इस विषय में तुम्हें मुझ से ज्यादा मालूम होगा। लेकिन नौजवानों में कुछ बहादुरी चाहता हूँ। यदि तुम्हारे भीतर बहादुरी आ जाय, तो मैं तुम्हें बहुत से काम बताऊँ। मेरा अनुमान है कि तुम में से बहुत से लोग अविवाहित और काफी लोग ब्रह्मचारी भी हैं। मैं काफी शब्द का इसलिये प्रयोग कर रहा हूँ, क्योंकि मैं विद्यार्थियों को जानता हूँ। जो विद्यार्थी लड़कियों को वासना भरी दृष्टि से देखता है, वह ब्रह्मचारी नहीं है। मैं चाहता हूँ, तुम लोग प्रतिज्ञा करो कि किसी ऐसी लड़की से विवाह न करोगे, जो विधवा न हो। तुम विधवा लड़कियों को ढूँढ़ो और यदि न मिलें, तो विवाह ही न करो। ऐसा निश्चय करके संसार को बताओ, अपने माँ-बाप को (यदि वे हों) बताओ, या अपनी बहनों को बताओ। मैं सुधार के लिये उन्हें बाल-विधवा कहता हूँ, क्योंकि मेरा विश्वास है कि जो लड़की १०-१५ साल की अवस्था में अपनी सम्मति दिये बिना ब्याही जाय और जो कभी अपने पति के साथ न रही हो, और अचानक विधवा घोषित कर दी जाय, वह विधवा नहीं। वह इस शब्द

का, भाषा का अपमान और अपवित्र करना है। हिन्दुत्व में विधवा के साथ पवित्रता की सुगन्ध होती है। मैं स्व० रमाबाई रानाडे जैसी विधवाओं की उपासना करता हूँ, जो जानती हैं कि विधवा होना क्या है। परन्तु ६ वर्ष की बच्ची को क्या मालूम कि पति क्या होता है। यदि इस प्रेसीडेन्सी में ऐसी बाल-विधवाएँ नहीं हैं तो मैं हार मानता हूँ; लेकिन अगर हैं' तो तुम्हारा यह पवित्र कर्तव्य है कि इस पाप से मुक्त होने के लिए उनसे विवाह करने का निश्चय करो। मैं विश्वास करता हूँ कि इस प्रकार के जो पाप कोई जाति करती है, पार्थिव रूप से उस पर प्रभाव डालते हैं। मेरा विचार है कि इस प्रकार के सभी पापों ने हमें गुलामी में बाँध रखा है। यदि तुम्हें 'हाउस ऑव कामन्स' में उत्तम से-उत्तम ......

मिलें तो भी यहाँ तब तक बेकार होगा, जब तक कि इसे चलाने के लिए उपयुक्त पुरुष और स्त्रियाँ न होंगी। क्या तुम यह सोचते हो कि जब तक हमारे भीतर एक भी ऐसी विधवा है, जो अपनी आवश्यकताएँ पूरी करना चाहती है, परन्तु जबर्दस्ती रोक दी जाती है, तब तक हम अपने को ऐसा मनुष्य कह सकते हैं, जो अपने ऊपर या दूसरों पर राज्य कर सकता है, या जो ३० करोड़ वाले राष्ट्र के भाग्य का निर्माण कर सकता है। यह धर्म नहीं, अधर्म है। मैं ऐसा कहता हूँ क्योंकि हिन्दुत्व का सार मुझमें है। ऐसा मत समझो कि मेरे भीतर पश्चिमी विचारधारा काम कर रही है। मैं अपने को पवित्र भारतवर्ष की आत्मा से सराबोर होने का दावा करता हूँ। मैंने पश्चिम से बहुत सी चीजें सीखी हैं, परन्तु इसे नहीं।

... के वैधव्य का हिन्दू धर्म में कोई समर्थन नहीं।

मैंने बाल-विधवाओं के विषय में जो कुछ कहा है, वह निश्चित रूप से बाल-पत्नियों के विषय में भी लागू है। तुम्हें अपने ऊपर इतना अधिकार होना चाहिए कि १६ वर्ष से कम की लड़की से विवाह न करो। यदि सम्भव होता, तो मैं निचली सीमा २० वर्ष रखता। लड़कियों के शीघ्र विकास का उत्तरदायित्व हमारे ऊपर है, भारतवर्ष की जलवायु पर नहीं। मैं ऐसी लड़कियों को जानता हूँ, जो २० वर्ष की हैं, फिर भी पवित्र हैं और अपने आस-पास के बुरे वातावरण से मुक्त हैं। हमें इस तीव्र गति को अपनाना चाहिए। कुछ ब्राह्मण विद्यार्थियों से कहता हूँ, यदि तुम्हारे लिए आत्म-संयम संभव नहीं तो अपने को ब्राह्मण मत समझो। ऐसी १६ साल की लड़की चुनो जो बाल-विधवा हो गयी हो। यदि ब्राह्मण विधवा न मिले तो जो भी लड़की तुम्हें पसन्द हो, चुन लो। मैं बताता हूँ, हिन्दुओं का भगवान उस लड़के को, जो १२ साल की लड़की बर्बाद करने की अपेक्षा अपनी जाति से बाहर विवाह करता है, क्षमा करेगा। जब तुम अपनी वासना पर नियंत्रण नहीं कर सकते, तो तुम्हें शिक्षित नहीं कहा जा सकता। तुमने अपनी संस्था को प्रमुख संस्था कहा है। मैं जानता हूँ, चरित्र में अंग्रेजी विद्यार्थियों को पैदा करके तुम इस नाम को सार्थक करो। बिना चरित्र के शिक्षा और बिना प्रारम्भिक पवित्रता के चरित्र व्यर्थ है। मैं ब्रह्मणत्व की पूजा करता हूँ, मैंने वर्णाश्रम-धर्म का समर्थन किया है। किन्तु ऐसे ब्रह्मणत्व से जो अछूती कुमारी विधवाओं व कुमारियों की मान-हानि की स्थिति सहन कर सकता है, मेरा दम घुटता है। (ब्राह्मणत्व इससे कठोर है। मैं

में शादी करने की या बिल्कुल ही शादी न करने की सलाह देता हूँ। इसकी पवित्रता की तभी रक्षा हो सकेगी जब कि बाल-विधवाओं का अभिशाप दूर कर दिया जायगा। ब्रह्मचर्य के पालन से विधवाओं को मोक्ष मिलता है, इसका तो अनुभव में कोई प्रमाण नहीं मिलता है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए केवल ब्रह्मचर्य ही नहीं वरन् और भी बातों की आवश्यकता होती है और जो ब्रह्मचर्य जबर्दस्ती लादा गया है, उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। उससे तो अकसर गुप्त पाप होते हैं जिससे उस समाज की नैतिक शक्ति का ह्रास होता है। पत्र-लेखक महाशय को यह जान लेना चाहिए कि मैं यह जातीय अनुभव से लिख रहा हूँ।

यदि मेरी इस सलाह से बाल-विधवाओं से न्याय किया जायगा और इस कारण कुँवारियों के मनुष्य की विषय-लालसा के लिए बेची जाने के बदले उन्हें वय और बुद्धि में बढ़ने दिया जायगा, तो मुझे बड़ी खुशी होगी।

विवाह के मेरे विचारों में पुनर्जन्म और मुक्ति में कोई असंगति नहीं है। पाठकों को यह मालूम होना चाहिए कि करोड़ों हिन्दू, जिन्हें हम अन्यायतः नीच जाति के कहते हैं, उनमें और पुनर्जन्म का कोई प्रतिबन्ध नहीं है और मैं यह भी नहीं समझ सकता हूँ कि इन स्त्रियों के पुनर्जन्म से उन विचारों को क्यों नहीं बाधा पहुँचती है और लड़कियों की—जिन्हें गलत तौर पर विधवा कहा जाता है—शादी से इन मन

विचारों को क्योंकर बाधा पहुँचती है ? पत्र-लेखक की पुष्टि के लिए मैं यह भी कहता हूँ कि पुनर्जन्म और मुक्ति मेरे विचारों में केवल विचार ही नहीं है, परन्तु ऐसा सत्य है जैसा कि सुबह को सूर्य का उदय होना। मुक्ति सत्य और उसे प्राप्त करने के लिए मैं भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ। इसी मुक्ति के विचार ने मुझे बाल-विधवाओं के प्रति किये जानेवाले अन्याय का स्पष्ट भान कराया है। अपनी कायरता के कारण हमें, जिनके प्रति अन्याय किया गया है उन वर्तमान बाल-विधवाओं के साथ सदा स्मरणीय सीता और दूसरी स्त्रियों के नाम, जो पत्र-लेखक ने गिनाए हैं, नहीं लेना चाहिए।

अन्त में यद्यपि हिन्दू-धर्म में सच्चे विधवापन का गौरव किया गया है और ठीक किया गया है, फिर भी जहाँ तक मेरा ख्याल है, इस विश्वास के लिए कोई प्रमाण नहीं है कि वैदिक काल के विधवाओं को पुनर्लग्न का संपूर्ण प्रतिबन्ध था। परन्तु सच्चे विधवापन के विरुद्ध मेरी लड़ाई नहीं है। वह उसके नाम पर होनेवाले अत्याचार के खिलाफ है। अच्छा रास्ता तो यह है कि मेरे ख्याल में जो लड़कियाँ हैं, उन्हें विधवा ही नहीं मानना चाहिए और उनका यह असह्य बोझ दूर करना प्रत्येक हिन्दू का, जिसमें कुछ भी वीरत्व है, स्पष्ट कर्तव्य है। इसलिए मैं फिर जोर देकर हरेक नौजवान हिन्दू को सलाह देता हूँ कि इन बाल विधवाओं के सिवाय दूसरी लड़कियों से शादी करने से वे इन्कार कर दें।

उठा देती है। नैतिकता और भावनाओं के विषय में मनुष्य पशु से ऊँचा है। दोनों के लिए दो भिन्न प्रकृति के नियम हैं। मनुष्य में तर्क, अच्छे-बुरे की पहचान और स्वतन्त्र इच्छा होती है, परन्तु पशु में ऐसा कुछ नहीं। वह स्वतन्त्र शक्ति नहीं रखता और न भले-बुरे की पहचान ही कर सकता है। परन्तु पुरुष स्वतन्त्र शक्ति रखने से इनका भेद जानता है और अपने ऊँचे स्वभाव का पालन करते समय पशु से ऊँचा दिखाई देता है और नीचे स्वभावों के पालन करते समय पशु से नीची बात भी कर सकता है। जो जातियाँ बिलकुल असभ्य मानी जाती हैं, वे भी लैंगिक सम्बन्ध में कुछ नियम मानती हैं। यदि यह माना जाय कि बन्दिश ही जंगली है, तो इस बन्दिश से मुक्त होना ही आदमी का कानून होना चाहिए। यदि सभी लोग इस अनियन्त्रित नियम का पालन करें, तो २४ घण्टे पूर्ण अशान्ति मच जायगी। स्वभावतः पशुओं से अधिक वासना-युक्त होने के कारण इस अनियंत्रण में, वे रोक थाम की वासना की चिनगारी सारी पृथ्वी पर फैल जायगी और समस्त मानव-समाज को भस्म कर देगी। मनुष्य यहीं तक पशु से ऊँचा है जहाँ तक त्याग और नियंत्रण कर सकता है, जिसमें पशु असमर्थ है।

बहुत-से रोग जो आजकल फैले हुए हैं, ऐसे हैं जिनका विवाह की प्रथा में आ गयी बुराई है। मैं एक भी विवाहित पुरुष का नाम जानना चाहता हूँ जो विवाह के सभी नियमों और बन्धनों का पालन करने पर भी ऐसे रोगों का शिकार हुआ हो, जो संवाददाता के दिमाग में है। बालमृत्यु,

बालविवाह और इस प्रकार के
भी होते हैं। क्योंकि कानून कहता
जाने पर स्वस्थ और नियंत्रण में स
होने पर ही साथ बँधे। जो इस नि
को संस्कार समझते हैं, कभी दुःखी
संस्कार है, वहाँ किसी की मृत्यु
सम्बन्ध शारीरिक नहीं, आत्मा का
सम्बन्ध हो तो स्त्री या पुरुष के मर
अनिवार्य और असत्य है। जहाँ वि
जायगा, वहाँ विवाह की संज्ञा ही
कम होते हैं, परन्तु उसकी जिम्मेदा
इसकी प्रथा पर है और उसीका सुधा

संवाददाता ने समझा है कि वि
नहीं, बल्कि एक रिवाज है, सो भी
खतम कर देना चाहिए। मैं स्वीकार
जिससे धर्म की रक्षा होती है। यदि
टुकड़े हो जायँगे। धर्म नीव-नियं

अमर, यह जानता है कि आत्म-नियंत्रण और संगठन के बिना आत्म-ज्ञान नहीं हो सकता। शरीर या तो वासना का क्रीड़ा-स्थल होगा या आत्मज्ञान का मन्दिर। यदि यह आत्मज्ञान का मन्दिर है, तो उसमें किसी प्रकार की अशुद्धता और अधिष्ठता को स्थान नहीं। आत्मा शरीर पर सदा स्वत्व रक्खेगी।

जब नियंत्रण नहीं रक्खा जायगा और विवाह-बंधन ढीला होगा, तो स्त्रियाँ घृणा की पात्री होंगी। यदि पुरुष उसी प्रकार अनियंत्रित रहे जैसे पशु, तो वे नष्ट ही हो जायँगे। मेरा विश्वास है जितने रोग संवाददाता ने बताये हैं, वे सब विवाह की प्रथा हटा देने से नहीं, वरन् उसके नियमों को समझाने और पालन कराने से ही दूर होंगे।

मैं मानता हूँ कि कुछ जातियों में अपने निकट सम्बन्धियों के यहां शादी-ब्याह होता है और दूसरी जातियों में इसका निषेध है; कुछ जातियों में बहुविवाह की आज्ञा है और कुछ में नहीं। यह चाहे हम के सभी जातियों में समान नियम होते, इस विभिन्नता का यह अर्थ नहीं होता कि सभी प्रकार के नियंत्रण खतम कर दिये जायें।

जैसे-जैसे हम अनुभवशील होते जायँगे, हमारे भीतर ज्ञान आता जायगा। आज भी नैतिक समाज एकपत्नीत्व ही का समर्थक है और कोई भी धर्म बहु-विवाह को अनिवार्य नहीं मानता। समय और स्थान के अनुकूल नियंत्रण में कुछ परिवर्तन कर देने पर भी आदर्श वैसे ही रहता है।

———

तक मुझे मालूम है) मेरे हाथ में रख दिये और मुझे उनका मूल्य १४०० डॉलर ही लगा। उसने मुझे एक नोट दिया, जिसका अर्थ था कि मैं उसे आश्रम तक ले जाऊँ। उस समय उसके माँ-बाप भी उपस्थित थे और उन्होंने शादी के लिए सत्यवती के गहनों के समर्पण का समर्थन किया। मैंने उनसे कहा कि उस लड़की को पर्दे के घेरे में न बन्द रक्खें और उसके साथ वैसे ही व्यवहार करें, जैसे घर की अन्य लड़कियों के साथ। मैंने सत्यवती देवी को बताया कि केवल विधवा हो जाने से जेवरों के समर्पण करने की आवश्यकता न थी, परन्तु वह अपने निर्णय पर दृढ़ थी। उसके लिए वे निरर्थक थे। मैंने यह भी कहा कि यदि माँ बाप राजी हों, तो खुशी के साथ मैं उसे आश्रम ले चलूँगा। उन्होंने वादा किया है कि वे इसपर ध्यान देंगे और लड़की को हर प्रकार की आशा दिलाई है कि उसे मेरे साथ आश्रम भेज देंगे। उसका पिता, जो सतर्क और चुप था, अपनी लड़की की ओर बड़ा उदार मालूम हुआ। अधिक सान्त्वना न दे सकने के लिए मुझे बड़ा दुःख रहा और अलग होते समय मेरा मन बड़ा भारी था।

इसलिए पदापदु में मेरा व्याख्यान सत्यवती देवी पर ही हुआ। मैंने लोगों को बताया कि पर्दे को समाप्त कर देना चाहिए और यदि कोई विधवा विवाह करना चाहे, तो माँ-बाप भी सहायता देना अपना कर्तव्य समझें। जब १८ वर्ष का लड़का पत्नी के देहान्त हो जाने पर विवाह कर सकता है, तो किसी भी ऐसी अवस्था की विधवा को क्यों अधिकार न दिया जाय ? किसी भी जाति के लिए स्वेच्छाकृत वैधव्य गौरव है और

स्त्रियों को मुक्त कर दो

डाक्टर एस. मुथुलक्ष्मी ने जो मद्रास की एक सामाजिक कार्यकर्त्री हैं, मुझे एक लम्बा खत लिखा है, जिसका आधार मेरा आन्ध्र का एक व्याख्यान है। उस खत का कुछ हिस्सा मैं नीचे दे रहा हूँ:—

"आपने अपनी बेजवाडा से गुरनार की यात्रा में, जनता की दैनिक आदतों में स्वस्थ परिवर्तनों तथा सुधारों की जो परम आवश्यकता अनुभव की है, वह मुझे बहुत अच्छी लगी।"

"मैं परम विनम्रता-पूर्वक स्वीकार करती हूँ कि स्त्रियों में डाक्टर की हैसियत से मेरा आपसे पूर्ण साम्य है। किन्तु क्या आप कृपया मुझे यह कहने की आज्ञा देंगे कि यदि शिक्षा से सामाजिक सुधार, सुन्दर स्वास्थ्य और सफाई आयेगी तो स्त्रियों की शिक्षा से ही?"

"क्या आप ऐसा नहीं सोचते कि आजकल के समाज में बहुत कम स्त्रियों को शिक्षा-पूर्ण शारीरिक और दिमागी विकास तथा आत्मव्यंजन का अवसर मिलता है?"

"क्या आप नहीं मानते कि उनका सारा व्यक्तित्व विश्वासों और प्रथाओं के भार से बुरी तरह कुचला जा रहा है?"

"क्या बाल-विवाह शारीरिक, बौद्धिक एवं आत्मिक विकास की जड़ को नष्ट नहीं करता?"

"क्या बाल-स्त्रियों की दुःखपूर्ण कहानी और हमारी विधवाओं और

स्त्रियों और माताओं के रूप में वे भारत के भावी प्रबन्धकों के संगठन मार्ग-प्रदर्शन और निर्माण का पवित्र कर्तव्य पूर्ण करेंगी।"

"यदि कांग्रेसी लोगों का विश्वास है कि स्वतंत्रता हर राष्ट्र और व्यक्ति का जन्म-सिद्ध अधिकार है और यदि वे किसी भी दशा में उसे प्राप्त करना चाहते हैं, तो क्या उन्हें सबसे पहले अपनी स्त्रियों को बुरी रीतियों और विश्वासों से स्वतंत्र नहीं करना चाहिए जिनके कारण उनका स्वास्थ्य-विकास मारा जाता है? और यह तो उन्हीं (कांग्रेसी लोगों) के ही हाथों में है।"

"हमारे कवियों, सन्तों और ऋषियों, सभी ने यही कहा है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि जो देश या राष्ट्र स्त्रियों का सम्मान नहीं करता, वह कभी बड़ा नहीं हुआ और न भविष्य में ही हो सकता है। हमारे राष्ट्र के पतन का मुख्य कारण यही है कि इन शक्ति की सजीव मूर्तियों का हम आदर नहीं करते थे। यदि स्त्रियों का उत्थान (जो देवी माताओं की अवतार हैं) तो मत समझो कि हमारी उन्नति का कोई और मार्ग हो सकता है।"

"स्वर्गीय सर्वमान्य भारती ने भी, जो तामिल के महाकवि थे, यही कहा है।"

"अतः क्या आप अपनी यात्रा में लोगों को स्वतंत्रता का सीधा और निश्चित मार्ग अनुसरण करने की सलाह देंगे?"

डा० मुथुलक्ष्मी की कांग्रेस के लोगों से इस कार्य के भार-वहन की आशा बिलकुल ठीक है। बहुतसे कांग्रेस के लोग व्यक्तिगत रूप से भी

स्त्रियों और माताओं के रूप में वे भारत के भावी प्रबन्धकों के संगठन, मार्ग-प्रदर्शन और निर्माण का पवित्र कर्तव्य पूर्ण करेंगी।"

"यदि कांग्रेसी लोगों का विश्वास है कि स्वतंत्रता हर राष्ट्र और व्यक्ति का जन्म-सिद्ध अधिकार है और यदि वे किसी भी दशा में उसे प्राप्त करना चाहते हैं, तो क्या उन्हें सबसे पहले अपनी स्त्रियों को बुरी रीतियों और विश्वासों से स्वतंत्र नहीं करना चाहिए जिनके कारण उनका स्वास्थ्य-विकास मारा जाता है? और यह तो उन्हीं (कांग्रेसी लोगों) के ही हाथों में है।"

"हमारे कवियों, सन्तों और ऋषियों, सभी ने यही कहा है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि जो देश या राष्ट्र स्त्रियों का सम्मान नहीं करता, वह कभी बड़ा नहीं हुआ और न भविष्य में ही हो सकता है। हमारे राष्ट्र के पतन का मुख्य कारण यही है कि इन शक्ति की सजीव मूर्तियों का हम आदर नहीं करते थे। यदि स्त्रियों का उत्थान (जो देवी माताओं की अवतार हैं) तो मत समझो कि हमारी उन्नति का कोई और मार्ग हो सकता है।"

"स्वर्गीय सर्वमान्य भारती ने भी, जो तामिल के महाकवि थे, यही कहा है।"

"अतः क्या आप अपनी यात्रा में लोगों को स्वतंत्रता का सीधा और निश्चित मार्ग अनुसरण करने की सलाह देंगे?"

डा० मुथुलक्ष्मी की कांग्रेस के लोगों से इस कार्य के भार-वहन की आशा बिलकुल ठीक है। बहुतसे कांग्रेस के लोग व्यक्तिगत रूप से औ

अन्धविश्वास कर गये हैं और जो बुराई की जननी हैं, उन्हें सुधार मे क्रियात्मक कार्य करना पड़ेगा। स्त्रियों की स्वतन्त्रता, भारत की स्वतन्त्रता अछूत का रोग मिटाना, ग्राम जनता की आर्थिक दशा का सुधार इत्यादि कार्यों के लिए लोगो को शहरो मे जाकर देहाती जिन्दगी मे ही सुधार करना पड़ेगा।

हमारी पतित बहनें

सबसे पहले आन्ध्र प्रान्त के कोकोनाडा शहर मे मुझे वे स्त्रिया देखने को मिली, जो अपनी रोटी के लिए अपनी इज्जत बेचती हैं। मुझे उनमें केवल आधे दर्जन के साथ कुछ मिनट की मुलाकात हुई। दूसरी बार मैंने उन्हें बरीसाल मे देखा। एक सैकड़े से अधिक संख्या मे वे मुझसे मिलीं। उन्होंने मुलाकात के लिए एक खत पहले से ही लिखा था और उस पत्र मे यह भी कहा था कि कांग्रेस की सदस्य हो गयी हैं और तिलक-स्वराज-फण्ड मे चन्दा भी दे चुकी हैं; परन्तु उनकी समझ मे मेरी यह बात न आयी थी कि वे विभिन्न कांग्रेस-कमेटियो मे पद न ग्रहण करें। उन्होंने शुरू मे पूछा था कि भविष्य मे क्या करें। जो सज्जन पत्र लाये थे, मुझे देने मे बहुत हिचके; क्योंकि वे यह न जानते थे कि मैं इससे प्रसन्न हूँगा या अप्रसन्न। मैंने विश्वास दिलाया कि किसी भी प्रकार इन बहिनों की सेवा करना मेरा कर्तव्य है।

मैंने जो दो घण्टे इन बहनों के साथ विताये, चिरस्मरणीय हैं।

समय में खतम हो जाना चाहिए। हमारे भीतर जो भी सुन्दरतम रहा है, हम उसपर गर्व करने वाले उत्तराधिकारी हैं। और अपने पूर्वजों की गलतियाँ दुहराकर अपने को अपमानित न करना चाहिए। क्या आत्म-सम्मान करनेवाले भारतवर्ष में हर स्त्री के गुणों का हर मनुष्य से वैसा ही सम्बन्ध नहीं जैसा अपनी बहिन के गुणों का ? स्वराज का अर्थ है भारतवर्ष के हर निवासी को अपने भाई या बहन की तरह मानना।

अतः इन बहनों के सामने मनुष्य होने के नाते सिर लज्जा से झुक गया। कुछ अधिक अवस्था की थीं, अधिकतर २० से ३० वर्ष की थीं, और २ या तीन १२ साल से भी कम थीं। उन सबों के बीच ६ लड़कियाँ और लड़के थे, जिनमें से सबसे बड़ा उन्हीं में एक से विवाहित था, और जबतक कोई और उपाय न हो, यह लड़कियाँ भी उनकी ही तरह पाली जातीं। इनके भीतर यह विचार आना कि इनका सुधार असम्भव है, जीवित पुरुष के लिए कुठाराघात की भाँति था। फिर भी वे विनम्र और बुद्धिमान थीं। उनकी बातचीत गंभीर थी और उनके उत्तर स्पष्ट और सीधे होते थे। और कुछ क्षण के लिए उनके निश्चय उतने ही दृढ़ थे जितने किसी भी सत्याग्रही के। ११ ने प्रतिज्ञा की कि अपना पेशा छोड़कर कातना-बुनना सीखेंगी, बशर्ते कि उन्हें सहायता मिले। दूसरों ने कहा कि वे इस पर विचार करेंगी, क्योंकि वे मुझे धोखा नहीं देना चाहती थीं।

इस क्षेत्र में बरीसाल के युवकों के लिए काम है, यहाँ भारतवर्ष के हर सच्चे सेवक के लिए काम है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। यदि २००००

करने को कहता हूँ। इस सामाजिक रोग, नैतिक कुष्ठ के विषय में जो मैं जानता हूँ, सब नहीं लिखना चाहता, उसकी कल्पना ही शेष बातों की पूर्ति करे और फिर यदि वह स्वयं इस रोग का शिकार हो तो भय और शर्म से उससे दूर हो जाय। और हर मनुष्य चाहे जहाँ हो, अपने पड़ोस को पवित्र बनावे। मुझे मालूम है कि दूसरा हिस्सा लिखने के लिए ज्यादा आसान है, परन्तु करने के लिए कठिन। यह एक बारीक विषय है। इसकी बारीकी के ही कारण सभी विचारवान लोगों को इधर ध्यान देने की आवश्यकता है। अभागी बहनों के बीच में काम करने का भार सिद्धहस्त सुधारकों पर छोड़ना चाहिए। मेरा इशारा वहाँ काम करने की ओर है, जहाँ इन बदनाम घरों में जानेवाले बसते हैं।

भारतवर्ष की महिलाओं से एक अपील

विदेशी वस्त्र के बहिष्कार के लिये गांधीजी ने भारतवर्ष की स्त्रियों के नाम निम्नलिखित अपील निकाली—

प्रिय बहनो,

अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी ने आगामी ३० सितम्बर को विदेशी वस्त्र-बहिष्कार-आन्दोलन के लिए अन्तिम तारीख निर्धारित करके एक महत्वपूर्ण निर्णय किया है, जिसका आरम्भ बम्बई में ३१ जुलाई को लोकमान्य तिलक की स्मृति में यश की अग्नि जलाकर किया गया था अभी तक जिसे तुम लोगों ने उत्तम तथा सुन्दर समझा था, ऐसी साड़ियों

इसे यह सिद्ध करने के लिए आवश्यकता नहीं कि हमारा आन्दोल
आत्म पवित्रता का है।

इतना देने पर भी तुम से बहुत कुछ मिलने की आवश्यकता
तिलक स्वराज फण्ड के चन्दे में पुरुषों का विशेष हाथ था। प
स्वदेशी प्रोग्राम सम्भवतः तभी पूर्ण होगा, जब तुम सबसे अधिक हि
लो। जब तक तुम अपना सारा विदेशी वस्त्र न रखोगी, सब बहिष्का
असम्भव है। जब तक तुम्हारी यह चाह बनी रहेगी, तब तक त्याग
असम्भव है। और बहिष्कार का उद्देश्य है पूर्ण त्याग। हमें उन्हीं वस्त्रों
से संतोष करना चाहिये कि जिन्हें भारतवर्ष बना सकता है, जैसे ह
उन्हीं बच्चों पर सतोष करते हैं जिन्हें भगवान हमे देता है। अगर
बच्चा किसी बाहरी आदमी को बुरा लगे, तो भी मैंने किसी मां को उसे
बाहर फेंकते नहीं देखा है। इसी प्रकार राष्ट्रीय भारत की स्त्रियों को
यहाँ के वस्त्र का भी ध्यान रखना चाहिए। और तुम्हारे लिये केवल
भारत का कता और बुना ही यहां की उत्पत्ति है। फिलहाल तो तुम्हें भद्दी
और मोटी खादी ही पर्याप्त मात्रा मे मिल सकती है। फिर इसकी उन्नति
लिये अपनी सारी कला और रुचि इसमें लगाओ। और अगर तुम कुछ
ने मोटी खादी पर ही सन्तुष्ट रह गयीं, तो भारतवर्ष को पूर्ण आशा
यहां का प्राचीन, सुन्दर, महीन और उत्तम वस्त्र फिर बनने लगेगा,
देखकर सारे संसार को ईर्ष्या और निराशा होती थी। मैं तुम्हें
दिलाता हूँ कि छः महीने के त्याग मे यह मालूम हो जायगा
हम कलात्मक मानते हैं और ऊंची कला दिखावट पर ही निर्भर

इस कातने की रोजी का अंदाज न लगाओ। सम्पन्न वर्ग के लिए इसकी पर की आवश्यकता न हो सकती है और निःसन्देह बहुत गरीब स्त्रियों को इससे रोटी भी मिलेगी। विधवा स्त्रियों के लिए तो चरखा एक दैवी साथी की भाँति होना चाहिए। परन्तु तुम्हारे लिए, जो इस प्रयत्न को पढ़ोगी, यह एक धर्म, कर्तव्य है। यदि भारत की सभी सम्पन्न स्त्रियाँ कुछ समय तक प्रतिदिन कातें, तो सूत सस्ता हो जाय और अधिक-से-अधिक उत्पादन भी हो जाय।

इस प्रकार भारत की आर्थिक तथा नैतिक मुक्ति तुम्हारे ही हाथों में है, भारत का भविष्य तुम्हारे घुटनों पर है, क्योंकि आगामी पीढ़ी का पालन करोगी। तुम्हीं भारत की सन्तानों को साफ, ईश्वर से डर माननेवाली तथा बहादुर पुरुष और स्त्रियों के रूप में ला सकती हो। और कमजोर, डरपोक तथा विदेश की बारीक और बहुमूल्य वस्तुओं का चाहनेवाला भी बना सकती हो और अन्त में इस आदत का छूटना असम्भव ही होगा। आगे के कुछ सप्ताहों में पता चल जायगा कि भारत की स्त्रियाँ किस वस्तु की बनी हैं। मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि तुम क्या पसन्द करोगी। तुम्हारे हाथों में, ऐसी गवर्नमेन्ट की अपेक्षा, जो भारतवर्ष के साधनों को चूसती रही है और जिसका अब अपने में ही कुछ विश्वास नहीं रह गया है, भारत का भाग्य कहीं अधिक सुरक्षित है। हर स्त्रियों की सभा में मैं इस राष्ट्रीय प्रयत्न के लिए शुभ आकांक्षाएँ मांगता रहा हूँ और मैंने ऐसा केवल इसी विश्वास से किया है कि तुम पवित्र, सादी तथा दैवी हो और दूसरों को भी ये सब गुण दे सकती

स्त्रियाँ बाध्य थीं, परन्तु अब उन्हें चाहिए कि पुरुषों के साथ-साथ जीवन के उद्देश्य की कठिनाइयों को सहन करें। ईश्वर उनके सम्मान की रक्षा करेगा। जब मानो पुरुषों पर व्यंग्य करने के नाते द्रौपदी की रक्षा उसके स्वभाविक संरक्षक न कर सके, तो उसकी अपनी ही पवित्रता ने किया। और ऐसा सदा ही होगा। यहाँ तक कि जो शारीरिक रूप में सबसे दुर्बल है वह भी अपनी इज्जत बचा सकता है। पुरुषों को स्त्रियों के बचाने में गौरव अनुभव करना चाहिए, परन्तु साथ ही पुरुष की अनुपस्थिति में या पुरुष द्वारा उसकी रक्षा के पवित्र कर्तव्य के न करने में अपने को असहाय न समझना चाहिए। जो मरना जानता है, उसे अपने सम्मान की रक्षा में किसी प्रकार के भय की आशङ्का न होनी चाहिए।

मैं भारत की स्त्रियों को चाहता हूँ कि वे तुरन्त शान्तिपूर्वक उन लोगों का नाम इकट्ठा करें, जो इस ज्वाला में कूदने को प्रस्तुत हैं। वे अपना नाम बङ्गाल की स्त्रियों को भेजें और बङ्गाल की स्त्रियाँ यह महसूस करें कि उनकी और दूसरी जगह की बहनें उनके उत्तम उदाहरण पर चलने को तैयार हैं। सम्भव है, जेल-जीवन ग्रहण करने या इसके जो कुछ भी बर्ताव उनके साथ हो, उसे भुगतने के लिए बहुत-सी स्त्रियाँ न आवें। परन्तु यदि राष्ट्र को पहली बार थोड़ी भी संख्या में स्त्रियाँ मिलेंगी, तो उसके लिए लज्जा की बात न होगी।

हूँ कि इस अनुभव का एक सरल कारण है। असल में कताई धीमी और एक दूसरो से शान्त क्रिया है। स्त्री त्याग की और इसीलिए अहिंसा की मूर्ति है। इस कारण उसका काम युद्ध की अपेक्षा शान्ति को अधिक सहायक होना चाहिए। और है भी। अगर आज उसे हिंसात्मक युद्ध के कामों मे घसीटा जा रहा है, तो यह मौजूदा सभ्यता के लिए कोई शोभा की बात नही है। मुझे जरा भी शक नहीं है कि हिंसा स्त्री के लिए इतनी अशोभनीय चीज है कि वह बहुत जल्द अपनी मूल-प्रवृत्ति पर इस तरह बलात्कार किये जाने के विरुद्ध विद्रोह कर उठेगी। मुझे लगता है कि पुरुष भी अपनी इस मूर्खता पर पछताएगा। स्त्री-पुरुष की समानता का यह अर्थ नहीं है कि उनके काम भी एक से ही हों। स्त्री के शिकार खेलने या भाला चलाने पर कोई कानूनी रुकावट भले ही न हो, परन्तु सहज ही उसे ऐसे काम से अरुचि होती है, जो मर्द के करने का है। प्रकृति ने स्त्री और पुरुष को अलग-अलग इसलिए बनाया है कि वे एक दूसरे के पूरक हों, उनकी आकृतियों की तरह उनके कार्य भी निश्चित कर दिये गये हैं।

लेकिन मेरे मतलब के लिए यह जरूरी नहीं कि स्त्री पुरुष का अलग-अलग काम होना साबित किया जाय। यह बात तो है ही और भारत में तो हर हालत मे है कि लाखों स्त्रियाँ कातने को अपना स्वाभाविक काम समझती हैं। वर्किङ्ग कमेटी के प्रस्ताव से पुरुषों का भार अपने आप स्त्रियों के कन्धों पर चला आया है और उन्हें जौहर दिखाने का मौका मिला है। मुझे यह देखकर कितनी खुशी होगी कि मेरी भावी

रहने के परिणाम-स्वरूप मैंने सुझाया है कि चरखा ही ऐसा है, जिस यह आमदनी पूरी हो सकती है।

फिर उन्होंने खादी के उत्पादन और विक्रय का चार्ट लेकर बिहा की बढ़ती हुई खादी की मात्रा तथा उसकी बिक्री की कमी की ओर ध्यान दिलाया।

इस उत्पादन का अर्थ है ३०००० रुपये का ३०००० बिहार के निर्धन स्त्रियों में विभाजन। मेरे साथ दरभङ्गा के खादी-केन्द्रों में आओ और देखो चरखे ने हिन्दू तथा मुसलमान स्त्रियों में कितना सुख और शान्ति भर दिया है। यदि इससे और लोगों को रोजगार नहीं मिलता तो यह मेरी नहीं तुम्हारी गलती है। यदि तुम्हे उनके हाथों की बनायी हुई चीज खरीदने का ध्यान नहीं है तो यह काम नहीं बढ़ सकता। तुम्हारे हर गज खद्दर खरीदने से उन स्त्रियों को कुछ पैसा मिलता है। कुछ ही पैसे ज्यादा नहीं। परन्तु इसका अर्थ है कि जहाँ कुछ भी नहीं पहुँचता था, वहाँ कुछ पैसा पहुँचता है। मैंने बरीसाल और राजामण्डी की पतित बहनों को देखा। एक युवती लड़की आयी और बोली "गांधी, तुम्हारा चरखा हमें क्या दे सकता है? जो लोग हमारे यहाँ आते हैं, वे कुछ मिनटों के लिए ५) से लेकर १०) तक देते हैं।" मैंने उनसे कहा, "चरखा तुम्हें उतना धन तो नहीं दे सकता, परन्तु यदि वे इस अपमान-जनक कार्य को छोड़ दें, तो मैं उन्हें कातना और बुनना सिखा सकता हूँ और इस प्रकार सम्मानपूर्वक उनको रोजी पैदा करने में सहायता करता हूँ।" उसकी बात सुन कर मेरा दिल बैठ गया और मैंने भग

भी चलाती रहती है। पर जाड़े में जब कि जमीन बरफ से ढक जाती है, वह सारा दिन यही कताई बुनाई करती है। आप उससे यह करघा और चरखा छुड़ा लीजिये और उसकी दशा बिगड़ी। पर इस उद्यम के कारण उस पहाड़ी के सब किसानों में वह सबसे अधिक सुखी और आनन्दमय प्राणी है। क्यों? इस लिए कि उन सब में केवल उसीने इस पुराने उद्यम को पकड़े रखा और इसलिए केवल उसीका जीवन सम्पूर्ण और सच्चा भी है। उसकी एक छोटी-सी-तसवीर मैं आपके पास भेजती हूँ।

"एक लकड़ी के ठूँठ पर बैठी हुई वह अपने एक बकरे को प्यार कर रही है। इससे आपको उसके प्यारे, बूढ़े प्रसन्न चेहरे की कुछ कल्पना हो सकेगी। पास खड़ी हुई युवती उसकी पतोहू है।"

यह सुन्दर तसवीर मेरे पास है। पर मैं उसे 'यंग इंडिया' में प्रकाशित नहीं कर सकता। तसवीर की न्यूनता को पाठक अपनी कल्पना से ही पूर्ण कर लेंगे। ध्यान देने की बात है कि यन्त्रों के प्रभाव के नीं दबे हुए उन पश्चिमी देशों में भी ऐसे लोग हैं, जो चरखे और करघे द्वार जो कि एक समय प्रधान और सार्वभौम गृहोद्योग थे, सच्ची शानि प्राप्त कर सकते हैं और जब कि यह वृद्ध महिला इस ७५ वर्ष की अवस्थ में भी इस उद्यम के कारण जवानी के उत्साह को अनुभव करती है और उससे केवल आजीविका ही नहीं, बल्कि शान्ति भी प्राप्त कर रह है, तब भला, उस उद्यम की इस देश में कितनी अधिक आवश्यकता ... बिरली ही स्त्रियाँ ७५ वर्ष तक पहुँचती हैं। जहाँ अधिकांश वर्ष की अवस्था में ही जबरदस्ती बूढ़ी हो जाती हैं और जहाँ

की प्राप्ति के मार्ग को न भी जानते हों? या उसे जानकर भी उस पर अमल करने की हम में इच्छा या शक्ति ही न हो। फिर भी स्वाधीनता की पुकार तो न्याय और स्वाभाविक ही है और चाहे वह कितनी ही नाकामयाब हो, वह स्वाधीनता की पहली सीढ़ी तो जरूर है।

पर जब इन करोड़ों के भूखे मरने की बात कही जाती है, तब ये अज्ञानी निन्दक इस बात को भूल जाते हैं कि वे करोड़ों गरीब तो काम या रोटी के लिए पुकार मचाना भी नहीं चाहते। इसीलिये तो अँग्रेज इतिहासकार के साथ साथ हम भी उन्हें 'गूँगे' कहते हैं। और इसीलिए हमें (और निंदकों को भी) उनकी ओर से आवाज उठानी पड़ती है। हमें उन करोड़ों गूँगों को पहला पाठ पढ़ाना पड़ रहा है। और वे नहीं, हम ही उनकी इन भयंकर गरीबी और अज्ञान के लिए जिम्मेदार हैं। वे तो बेचारे यह जानते भी नहीं कि तुम्हें क्या चाहिए, क्योंकि वे जीते हुए भी मरे के समान हैं।

उन अस्पृश्यों से यह कहने की किसी में हिम्मत है, कि यदि तुम स्वाधीनता चाहते हो, तो ले लो, तुम्हें कौन रोकता है? परमात्मा बड़ा शान्तिशील और चिरसहिष्णु है। जालिम को वह उनकी कब्र खोदने देता है। हाँ समय-समय पर वह मृत्यु की चेतावनी बराबर दे दिया करता है।

हम कह सकते हैं, और न्यायपूर्वक कह सकते हैं कि यद्यपि उस अँग्रेज का ताना सैद्धान्तिक दृष्टि से ठीक ही है। परन्तु अँग्रेजों के मुँह से यह प्रश्न शोभा नहीं दे सकता जब कि हममें से हर एक आदमी

कठिनाई बहुत-सी और बहनें भी अनुभव कर रही हैं। यह खत लेखिका की देशभक्ति का प्रभाव है, क्योंकि बहुत-सी ऐसी स्त्रियाँ नहीं हैं, जो स्वयं पहनने के ढङ्ग को महत्व न देने की ओर रिवाजों के खिलाफ चलने के लिए कदम बढ़ायें। ऐसी बहनों और भाइयों की संख्या बहुत अधिक होगी और प्रसन्नतापूर्वक स्वराज्य हासिल करना चाहेंगे, यदि वह बिना किसी प्रकार के कष्ट सहन किये या खर्च के और अपनी पुरानी प्रथाओं को मानते रहकर भी—चाहे वे उचित हों या नहीं—प्राप्त किया जा सके।

परन्तु स्वराज्य ऐसी सस्ती वस्तु नहीं है। स्वराज्य प्राप्त करने का अर्थ है—अपने भीतर आत्म-त्याग। प्रान्तीयता की भावना का त्याग करते हुए का अभ्यास है। प्रान्तीयता राष्ट्रीय स्वराज्य प्राप्त करने के ही मार्ग में बाधक नहीं, परन्तु प्रान्तीय राज्य के प्राप्त करने में भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ ऐसी भावनाओं के लिए अधिक जिम्मेदार हैं। वैविध सीमा तक अच्छा है, लेकिन यदि सीमा पार कर जाय और संस्कार और प्रथाएँ विविधता के नाम पर प्रदर्शित किए जायँ तो वह राष्ट्रीयता को दमन करनेवाला होगा।

दक्षिणी साड़ी एक सुन्दर वस्तु है, परन्तु ऐसी सुन्दरता राष्ट्र का बलि-दान करने से मिले, तो उसे समाप्त कर देना होगा। यदि पञ्जाबी आधी या छोटी साड़ी पहनने का कच्छ का ढङ्ग खादी को सस्ता बनायें और सब के लिए सुगम करें, तो उसे ही कलात्मक समझना चाहिये। दक्षिणी, , कच्छी, बंगाली सभी साड़ी पहनने के राष्ट्रीय ढङ्ग हैं और उनमें

कठिनाई बहुत-सी और बहनें भी अनुभव कर रही हैं। यह खत लेखिका की देशभक्ति का प्रभाव है, क्योंकि बहुत-सी ऐसी स्त्रियाँ नहीं हैं, जो स्वयं पहनने के ढङ्ग को महत्त्व न देने की ओर रिवाजों के खिलाफ चलने के लिए कदम बढ़ायें। ऐसी बहनों और भाइयों की संख्या बहुत अधिक होगी और प्रसन्नतापूर्वक स्वराज्य हासिल करना चाहेंगे, यदि वह बिना किसी प्रकार के कष्ट सहन किये या खर्च के और अपनी पुरानी प्रथाओं को मानते रहकर भी—चाहे वे उचित हों या नहीं—प्राप्त किया जा सके।

परन्तु स्वराज्य ऐसी सस्ती वस्तु नहीं है। स्वराज्य प्राप्त करने का अर्थ है—अपने भीतर आत्म-त्याग। प्रान्तीयता की भावना का त्याग करते हुए का अभ्यास है। प्रान्तीयता राष्ट्रीय स्वराज्य प्राप्त करने के ही मार्ग में बाधक नहीं, परन्तु प्रान्तीय राज्य के प्राप्त करने में भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ ऐसी भावनाओं के लिए अधिक जिम्मेदार हैं। वैविध्य सीमा तक अच्छा है, लेकिन यदि सीमा पार कर जाय और संस्कार और प्रथाएँ विविधता के नाम पर प्रदर्शित किए जायँ तो वह राष्ट्रीयता को दमन करनेवाला होगा।

दक्षिणी साड़ी एक सुन्दर वस्तु है, परन्तु ऐसी सुन्दरता राष्ट्र का बलिदान करने से मिले, तो उसे समाप्त कर देना होगा। यदि पंजाबी आधी या छोटी साड़ी पहनने का कच्छ का ढङ्ग खादी को सस्ता बनायें और सब के लिए सुगम करें, तो उसे ही कलात्मक समझना चाहिये। दक्षिणी, गुजराती, कच्छी, बंगाली सभी साड़ी पहनने के राष्ट्रीय ढङ्ग हैं और उनमें

फिर ऐसा हो जाने पर राष्ट्रीयता मनुष्यता में परि

पहनावे के मामले में लागू है, वही भाषा-भोजन वे
चित अवसर पर जैसे हम दूसरे प्रान्तों के पहनावे
इसी प्रकार भाषा या अन्य वस्तुएँ भी। परन्तु आज
बेजाने अंग्रेजी को अपनी मातृ-भाषा की अपेक्षा अ
रर्थक विनाशकारी और असम्भव कार्य में तमाम श
। दूसरे प्रान्तों की भाषाओं की अपेक्षा तो अँग्रेजी
व दिया जाता है।

ामिल स्त्रियों के विषय में

एक बहन लिखती है :—

ान्दोलन की सफलता में सबसे अधिक बाधा डाल
उनमें से बहुत सी प्रतिक्रियावादी हैं। और बड़े घ
रण स्त्रियाँ पश्चिमी दुर्गुणों का शिकार हो चुकी हैं।
न तीन बार कॉफी पीती हैं और इससे भी ज्यादा पी
ी हैं। पहनावे के मामले में भी उनकी हैसियत इस
होंने घरेलू सस्ते कपड़े पहनने छोड़ दिये हैं और कीमत
प्रयोग करती हैं। जवाहिरात के मामले में बाहर

अँगूठी जो मैंने उसे विवाह में दी थी—शादी की सम्पत्ति सुन्दर वस्त्र, तड़कीली-भड़कीली आदतें, साहित्यिक रुचियाँ, स्वास्थ्य और अब अपना जीवन भी देश को समर्पित कर दिया।

"उसका आपमें जो अनन्त विश्वास था, उसीके कारण वह आपके स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का पालन करती रही। आपकी असंतुलित फलों की खूराक से, जिसे वह ६ महीने धार्मिक रूप से सेवन करती रही, उसकी सुन्दर शारीरिक गठन गिरने लगी और फिर कभी ठीक न हो सकी।

"महात्माजी, मैं इतना निर्दयी नहीं कि आपके ऊपर दोषारोपण कर रहा हूँ। मैं तो एक बात कह रहा हूँ। एन० सी० ओ० आन्दोलन में प्रचार का कार्य करने में ही उसका ध्यान स्वास्थ्य की ओर से हट गया था,। उसने अपनी गलती जानी, परन्तु तब काफी देर हो चुकी थी, जिससे उसे अपने प्राण देने पड़े। आपने उसे एक खत में लिखा था।' "मैं सदा जानता था कि खद्दर-प्रचार के लिये तुम बड़े चाव से काम करोगी।" मेरे संयुक्त-राष्ट्र से वापस आने पर मेरे पैरों पड़कर उसने सबसे पहली प्रार्थना मेरे खद्दर पहनने के लिये की। अपने सूट, कमीज, निकर तथा अन्य विदेशी वस्त्रों को मैं नहीं अपना सकता था। मुझे इतनी भी आज्ञा न थी कि उन्हें एलोर में अपने घर में रहने दूँ। अम-रीका के एक पत्र में उसने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार करने की तथा आजीवन खद्दर पहनने की प्रतिज्ञा का ज़िक्र किया। उसे सफलता भी मिली। आधी प्रतिज्ञा का पालन अब मेरे लिये है। जब वह चमड़े

"आपकी ऐसी शिष्या न रही और मेरी आदर्श संगिनी। मेरी अर्धांङ्गिनी ने मुझे शोकग्रसित, निराश और वियोगी छोड़ दिया और उसकी कभी भी पूर्ति नहीं हो सकती।"

इसमें सन्देह नहीं कि मेरा एक भक्त-शिष्या से कहीं बड़ा ह्रास हुआ है। मुझे भारतवर्ष भर में जिन पुत्रियों पर अधिकार का सौभाग्य प्राप्त है, उनमें से एक न रही, ऐसा मैं महसूस कर रहा हूँ। और वह इनमें से श्रेष्ठतम पुत्रियों में से एक थी। वह कभी अपने विश्वास से न डिगी और पारितोषिक अथवा प्रशंसा की आशा किये बिना कार्य करती रही। मैं चाहता हूँ कि बहुत-सी पत्नियाँ अपनी पवित्रता और एकाग्र भक्ति से अपने पतियों पर वैसे ही अधिकार स्थापित करेंगी जैसी अन्नपूर्णा ने किया था। उन्होंने जो उलाहना, देश के लिए सेवा करने में अन्नपूर्णा के अपने प्राण अर्पण करने के वास्ते मुझे दिया है, उसे मैं पसन्द करता हूँ। मुझे सन्देह नहीं कि पूर्व इसके कि भारतवर्ष फिर पुरातन काल की भाँति, जैसा करोड़ों लोग विश्वास करते हैं, पवित्र और स्वतन्त्र हो। बहुत से युवक पुरुषों और स्त्रियों को इसका अनुकरण करना होगा और अपने प्राण समर्पित करने पड़ेंगे।

स्त्रियाँ और जवाहिरात

एक तामिल स्त्री डाक्टर ने एक पत्र और भेंट भेजी है, जिसका जिक्र उस खत में आया है। यह पत्र भेंट का महत्व बढ़ाता है और दूसरों के लिए उदाहरण का काम दे सकता है। मैं संक्षेप में नीचे इसे लिख रहा हूँ, (समर्पण करनेवाले, राज और स्थान का नाम छोड़ दे रहा हूँ।)

"कुछ पंक्तियाँ आपके पास यह बताने के लिए लिख रही हूँ कि मैंने हीरे की अँगूठी और एक जोड़ी 'इयररिंग', जो १० वर्ष पहले मुझे राजकुमार की उत्पत्ति के अवसर पर राज से मिली थी, का पार्सल भेजा है। मुझे यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि राजा को उसी स्थान में गुजरते होने पर भी आपको बुलाने का साहस न हुआ। मुझे पता चला कि ऐसा गवर्नमेंट के डर से हुआ। आप सोच सकते हैं, जब आपके जाने के बाद उन जवाहिरातों को जो मेरे साथ रहे थे, देखकर मेरे हृदय में कैसी भावनाएँ उत्पन्न हुई होंगी। उन्हें देखकर मेरा जी गुस्से से भर गया और फिर वह गुस्सा लाखों भूखी जनता के प्रति सहानुभूति में परिवर्तित हो गया, जिनके विषय में बहुधा आप बोलते थे। मैंने अपने से कहा, 'क्या ये जवाहिरात गरीबों के पेट से नहीं छीने हैं? इन्हें अपने पास रखने का कौन अधिकार है?' फिर मैंने उन्हें आपके पास भेज देने का निश्चय किया। आप उन्हें खादी के लिए उपयोग कर सकते हैं, जो मेरे बक्स के कोने में पड़े रहने की अपेक्षा कहीं उत्तम उपयोग

साहस ही नहीं होता। एक उत्तम कार्य के निमित्त अपनी खास चीज का दान उसे ऊँचा उठा देता है। इसके अलावा अधिकतर यह आभूषण कलाविहीन ही होते हैं। कुछ तो निश्चय ही भद्दे और मैल भरनेवाले होते हैं। कड़े, गले की भारी-भारी हँसलियाँ, सिरे के आभूषण और पहुँची से लेकर कुहनी तक चूड़ियों पर चूड़ियाँ, ऐसे ही गहने हैं। सिर के आभूषण बालों को सँवारने के लिए नहीं, बल्कि उलझे-पुलझे, बिना धुले और, बहुआ बदबू मारते हुए बालों के शृंगार के लिए ही वे पहने जाते हैं। मेरी राय में, कीमती गहने पहनने से देश को साफ ही नुकसान पहुँचता है। इन गहनों से मुल्क की भारी पूँजी रुक जाती है। या इससे भी खराब बात यह होती है कि यह पूँजी दिन-दिन कम होती चली जाती है। मेरा मत है कि आत्म-शुद्धि के इस आन्दोलन में स्त्री या पुरुष के आभूषण-दान से देश का स्पष्ट ही हित होता है। जो बहनें गहने देती हैं, वे राजी-खुशी से ही देती हैं। मेरी यह शर्त अवश्य रहती है कि जो आभूषण दान कर दें वह फिर न बनवाया जाय। वास्तव में बहनों ने मुझे आशीर्वाद दिया है कि मैंने उन्हें उन व्यर्थ की चीजों से छुटकारा दिला दिया, जिन्होंने उन्हें गुलाम बना रक्खा था। और बहुत से पुरुषों ने भी मुझे धन्यवाद दिया है कि उनके घरों में सादगी लाने का मैं एक साधन रहा हूँ।

निश्चित त्याग करो

गांधीजी के हरिजन दौरे के दरमियान मद्रास में उनके हस्ताक्षर के लिए एक लड़की ने ५) का नोट दिया।

गांधीजी ने कहा, "नहीं एक कंकण।" उस लड़की ने अपने दोनों कंकण उतार डाले और ५) का नोट भी दिया।

गांधीजी ने पूछा, "क्या इसे देने के लिए तुमने अपने माँ-बाप की आज्ञा ले ली है? अगर तुम चाहो, तो अपने कंकण ले लो।" लड़की ने यह कहकर कि उसे वह निशानी के रूप में रक्खेगी, एक ले लिया।

"क्या तुम अपने माँ-बाप से नया कंकण नहीं माँगोगी?"

लड़की ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया, "नहीं"।

"तो मुझे ले जाने दो" और लड़की मुस्कराती हुई चली गयी।

एक दूसरी लड़की ने कहा "बिना अपने पिता की आज्ञा के मैं कोई वस्तु कैसे दूँ?"

"नहीं देना चाहिए, परन्तु क्या तुम्हारे पिता स्वयं खादी स्वान्त्र्य का उपयोग करते हैं, तुम्हें नहीं देते?"

एक नवविवाहिता लड़की ने कहा, "मैं आपको रुपया दूँगी, परन्तु अपने जेवरात नहीं, क्योंकि यदि कोई जेवर दूँ तो निश्चय ही उसमें से दूसरा मिल जायगा जो कि आप न पसन्द करेंगे। मैं अपने जेवरात न दूँगी, सब हमेशा के लिए उनसे अलग हो सकूँ।"

"तुम ठीक कहती हो, मैं तुम्हारा रुपया नहीं चाहता। स्वयं ही

महिलाओं से

निश्चित त्याग करो

गांधीजी के हरिजन दौरे के दरमियान मद्रास में उनके हस्ताक्षर के लिए एक लड़की ने ५) का नोट दिया।

गांधीजी ने कहा, "नहीं एक कंकण।" उस लड़की ने अपने दोनों कंकण उतार डाले और ५) का नोट भी दिया।

गांधीजी ने पूछा, "क्या इसे देने के लिए तुमने अपने माँ-बाप की आज्ञा ले ली है? अगर तुम चाहो, तो अपने कंकण ले लो।" लड़की ने यह कहकर कि उसे वह निशानी के रूप में रक्खेगी, एक ले लिया।

"क्या तुम अपने माँ-बाप से नया कंकण नहीं माँगोगी?"

लड़की ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया, "नहीं"।

"तो मुझे ले जाने दो" और लड़की मुस्कराती हुई चली गयी।

एक दूसरी लड़की ने कहा "बिना अपने पिता की आज्ञा के मैं कोई वस्तु कैसे दूँ?"

"नहीं देना चाहिए, परन्तु क्या तुम्हारे पिता स्वयं सारी स्वतन्त्रता का उपयोग करते हैं, तुम्हें नहीं देते?"

एक नवविवाहिता लड़की ने कहा, "मै आपको रुपया दूँगी, परन्तु अपने जेवरात नहीं, क्योंकि यदि कोई जेवर दूँ तो निश्चय ही उसकी जगह दूसरा मिल जायगा जो कि आप न पसन्द करेंगे। मैं अपने जेवरात तभी दूँगी, जब हमेशा के लिए उनसे अलग हो सकूँ।"

"तुम ठीक कहती हो, मै तुम्हारा रुपया नहीं चाहता। रुपया तो

करो, हरिजनों के घर मे जाओ, उनकी देखरेख करो और हरिजन स्त्रियों से अपनी बहनों की तरह बातचीत करो।

यह हरिजनो का प्रश्न विशेषकर भारत की स्त्रियो के लिए है। मुझे आशा है कि तुम इस स्थान की हिन्दू-स्त्रियाँ, अपना कर्तव्य करोगी। मैं आशा करता हूँ कि तुममें से जो अंशतः या पूर्णरूप से अपने जेवर देना चाहें, देंगी। अगर तुम कोई भी चीज दो, तो उसकी जगह दूसरी न लेना चाहिए। मैं चाहता हूँ, तुम स्वयं व्यक्तिगत रूप से अनुभव करो कि तुमने इस काम के लिए कुछ दिया है जो रुपया या नोट से नहीं कर सकती, क्योंकि वे तुम्हें माँ-बाप से या पति से मिलते हैं। परन्तु जेवर तुम्हारी अपनी सम्पत्ति है। जब तुम बिना दूसरा लेने की इच्छा के अपने जेवर मुझे देती हो तो यह निश्चित रूप से तुम्हारा निजी त्याग है। तुममें से जिन्होंने मेरे सन्देह का भाव समझ लिया है, मैं चाहता हूँ कि वे ऐसा निश्चित त्याग करें।"

दिया जो सेवा और त्याग की मिसाल अपनी बहनों के सामने रखने सबसे प्रथम थीं, और बोले, "जिस दिन वे मुझसे मिलीं, उसी दि अपने सारे जेवर उतार डाले। स्त्रियों ने यह दृश्य देखा, वे आश्चर्य पड़ गयीं कि क्या हो रहा था और फिर जेवरों की वर्षा होने लगी क्या तुम्हारा यह विचार है कि जेवरों के उतार डालने पर वे कम सुन्द लगती थीं ? मुझे तो और अधिक सुन्दर मालूम पड़ती थीं। अंग्रेजी एक कहावत है, "सुन्दर वह है जो सुन्दर कार्य करे।"

कि क्या उसे ऐसे त्याग के लिए माँ-बाप की सम्मति मिल गयी थी। इसके पहले कि उस शर्मीली लड़की से मुझे कोई उत्तर मिले, मुझे किसी ने बताया कि उसके पिता उस सभा में थे और नीलाम की चीजों के बेचने में सहायता कर रहे थे और वे अच्छे कामों के लिए वैसे ही उदार थे जैसे उनकी लड़की। मैंने कौमुदी को याद दिलाया कि इनकी जगह नये जेवर न लिये जायँ और उसने दृढ़तापूर्वक शर्त मान ली। उसे अपने हस्ताक्षर देते समय मैं उस पर यह नोट देने से अपने को न रोक सका, "तुमने जो जेवरात उतारकर अलग कर दिये हैं, तुम्हारा त्याग उनसे कहीं सुन्दर आभूषण है।" ईश्वर करे उसका यह त्याग सच्ची हरिजन-सेविका होने का उद्गार हो।

कौमुदी का महत्वपूर्ण निर्णय

गांधीजी ने एक सोलह साल की मलाबारी लड़की, कौमुदी के त्याग के विषय में लिखा है। बडागरा में गांधीजी के ठहरने के आखिरी दिन वह अपने पिता के साथ उनसे मिलने आयी। मैं बडागरा न जाने के कारण, मैंने कौमुदी को प्रथम बार देखा। उसमें कोई दिखावा न था। वह सज्जनतापूर्वक बात करती थी और गम्भीर था। उसने इण्टरमीडिएट तक की शिक्षा पायी थी और वार्तालाप ठीक से समझ लेती थी। गांधीजी उसके त्याग के विषय में और जानना चाहते थे। वह यह जानना चाहते थे कि वह सभा में यह त्याग करने का निश्चय करके आयी थी, या वहीं सभा में ही ऐसा निश्चय किया था।

उसके पिता बोले, घर ही पर उसने ऐसा निर्णय किया था और उसे हम लोगों की सम्मति मिल गयी थी।

"परन्तु क्या उसकी माँ उसको बिना जेवर के देखकर दुःखी न होगी।"

"वह दुःखी होगी पर मेरा विश्वास है कि फिर जेवर पहनने को विवश न करेगी।"

"परन्तु कुछ समय बाद जब तुम्हारा विवाह होगा तो तुम्हारे पति तुम्हें बिना जेवर के देखना शायद ही पसन्द करें। तब तुम क्या करोगी? मेरे सामने नैतिक कठि[illegible] में लिखा है कि तुम फिर

आत्म-पवित्रता का। मैं आशा करता हूँ कि तुम पूर्णरूप से इसमें अपना भाग लोगी।

दिल्ली में

ईश्वर जो सभी प्राणियों का कर्ता है, सभी प्राणियों को समान दृष्टि से देखता है। यदि उसे नीच-ऊँच में कोई भेद-भाव होता तो उनमें बाह्य अन्तर होता। उदाहरण के लिए जैसे हाथी और चींटी में होता है। परन्तु उसने सभी मनुष्यों को एकता-रूप और एक सी ही स्वाभाविक आवश्यकताएँ दी हैं। यदि तुम हरिजनों को स्वास्थ्य-सम्बन्धी सेवा के कारण अछूत समझते हो, तो कौन माँ अपने बच्चे के लिए ऐसा नहीं करती? हरिजनों को, जो समाज के सबसे उपयोगी सेवक हैं, अछूत और जाति से बहिष्कृत समझना अन्याय की हद है। मैं हिन्दू-बहनों के भीतर इस पाप के विषय में चेतना जाग्रत करने के लिए भ्रमण कर रहा हूँ। हम किसी भी मनुष्य को अपनेसे छोटा समझें, यह तो कभी अच्छा काम नहीं हो सकता। हम सब उस ईश्वर के उपासक हैं, जिसे विभिन्न नामों से हम पूजते हैं। अतएव हम अपनी एकता का अनुभव करें और अछूत के साथ-साथ मनुष्यों के बीच ऊँच-नीच का भेद-भाव भी छोड़ दें।

मद्रास में

यहाँ मैं तुमसे एक माँग करने आया हूँ। यह बिलकुल भूल जाओ कि कुछ लोग छोटे और कुछ बड़े हैं। यह भी भूल जाओ कि कुछ स्पर्श

है। रहने का एक ऐसा भी धरातल है, जहाँ मनुष्यता को धक्का पहुँचाये बिना हम आ सकते। ये बस्तियाँ उससे भी नीची कोटि की हैं। मैं चाहता हूँ कि उस स्थान पर जो एक सुन्दर स्थान कहा जाता है, यह धब्बा सबसे पहले मिटाया जाय। मैंने सुना है कि इन भाइयों और बहनों को रहने की अच्छी जगह देने का प्रबन्ध पहले से हो रहा है। परन्तु तुम मुझसे सहमत होगे कि ऐसा करने मे समय का बहुत बड़ा ह लोगों को ऐसा कहने का अवसर न दो कि ये बस्तियाँ (जो तुम रहे हो) देर से बनीं।

हममें से सभी कुछ कमवेश पापी हैं। और सभी धार्मिक पुस्तकें (गीता, भागवत, तुलसी-रामायण इत्यादि) कहती हैं कि जो भी उस भगवान की शरण में जाता है, उसका नाम लेता है वह पाप से मुक्ति पा जाता है यह नियम सभी के लिए है।

इस प्रश्न के लिए एक और परख मैं बता रहा हूँ। हर मनुष्य या उससे छोटी जाति में कुछ विभाजक चिह्न हैं, जिससे मनुष्य को पशु से और कुत्ते को गाय से भिन्न माना जाता है। क्या अछूतों में भी कोई इस प्रकार का चिह्न है कि वे अछूत समझे जांय? वे उतने ही मानवी हैं, जितने हम में से कोई और। मनुष्यों से निम्न-कोटि के सभी प्राणियों को हम अछूत नहीं मानते। फिर यह पैशाचिक अन्याय कहां से और कैसे आता है? यह धर्म नहीं है, बल्कि घोर अधर्म है। मैं चाहता हूं कि तुम पाप छोड़ दो (यदि तुम्हारे भीतर यह हो)।

सदियों के इस पाप को मिटाने का एक ही मार्ग है। तुम हरिजनों की बस्तियों में जाओ, उनके बच्चों को अपने बच्चों की तरह अपनी छाती से लगाओ, उनकी भलाई में दिलचस्पी लो। यह मालूम करो कि उन्हें खाने-भर को भोजन, पीने को स्वच्छ पानी मिलता है या नहीं, उन्हें रोशनी और हवा जिसे तुम अपना अधिकार समझकर उपयोग करते हो, उन्हें भी मिलता है या नहीं। दूसरा तरीका है, कातने का काम शुरू करो और खादी की प्रतिज्ञा लो, जिससे इन लाखों दबाये गये लोगों को सहायता मिलती है। कातने के काम से तुममें और उनमें कुछ समता आयेगी और जो खादी का हर गज तुम पहनोगे, उससे इन हरिजनों

हो, मगर अब तो यह पाशविक प्रथा बिल्कुल बेकार है। इससे देश को भयंकर हानि हो रही है। आखिरी १० वर्षों में हमने जो कुछ शिक्षा पायी है, इस पर उसका कुछ भी असर न पड़ा-सा मालूम होता है, क्योंकि मैं देखता हूँ कि शिक्षित परिवारों में भी पर्दा बना हुआ है और इसलिए नहीं कि वे शिक्षित पुरुष इसमें विश्वास करते हैं, किन्तु वे इसका मर्दानगी से विरोध न करेंगे और इसे एकाएक ही मार न भगायेंगे। स्त्रियों की सैकड़ों सभाओं में हजारों स्त्रियों से मुझे बोलने का सुअवसर मिला है, मगर वहाँ के शोर-गुल के कारण सभा में आयी हुई स्त्रियों से बोल कर कुछ प्रभाव डालना असम्भव हो जाता है। जब तक वे अपने आँगन और घर के पिंजड़े में बन्द हैं, उनसे और किसी अच्छी बात की आशा नहीं की जा सकती। इसलिए जब वे अपने को एक बड़े कमरे में जमा पाती हैं, उनसे आशा की जाती है कि वे व्याख्याता का भाषण सुनें। जब शान्ति छा जाती है, तब भी रोजमर्रे की साधारण बातों में भी उनकी रुचि पैदा करना कठिन मालूम पड़ता है; क्योंकि उन्हें कभी स्वतन्त्रता की ताजी हवा का साँस लेने तो दिया नहीं गया। मैं जानता हूँ कि यह चित्र कुछ बढ़ा कर खींचा गया है। इन हजारों बहनों की जिनसे मुझे बोलने का अवसर दिया जाता है, बहुत ऊँची सुसंस्कृति को मैं खूब जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि पुरुषों की स्थिति तक वे चढ़ आ सकती हैं। मुझे यह भी मालूम है कि उन्हें बाहर आने का भी अवसर मिलता है। मगर यह पुरुषों के लिए तारीफ की बात नहीं है। सवाल यह है कि वे और बाहर क्यों

नहीं आयी है। हमारी स्त्रियों को भी वह स्वतन्त्रता क्यों नहीं प्राप्त है, जो पुरुष भोगते हैं।

पवित्रता कुछ पर्दे की आड़ में रखने से ही नहीं पनपती बाहर से ऊपर लादी नहीं जा सकती। पर्दे की दीवार से उनकी रक्षा नहीं की जा सकती। उसे तो भीतर से ही पैदा होना होगा। और अगर उसका कुछ मूल्य होना है, वह सभी प्रकार के बिना बुलाये आकर्षणों का सामना करने योग्य होनी चाहिये। वह तो सीता की पवित्रता सी उद्धत होगी। अगर वह पुरुषों की नजर को सहन न कर सके, तो उसे बहुत ही साधारण चीज कहना होगा। मर्दों को अगर मर्द होना है, तो उन्हें इस लायक बनना होगा कि अपनी औरतों का वे वैसा ही विश्वास कर सकें जैसा कि औरतों को उनका करना पड़ता है। हमारे एक अंग में पंग या अधूरा ही सही, मगर लकवा मारे हुए न होना चाहिए। राम का कोई ठिकाना न लगता, अगर सीता भी उन्हीं जैसी स्वतन्त्र और स्वाधीन नहीं होती मगर स्वतन्त्रता के लिहाज से द्रौपदी का उदाहरण शायद ज्यादे माकूल होगा। सीता कोमलता का अवतार थी वह नाजुक फूल थी, द्रौपदी थी विशाल वट वृक्ष, अपनी अदम्य रक्षा के काले भीम थे उसने झुका दिया। उसके लिए भीम भयंकर थे, मगर द्रौपदी के सामने वह भी शान्त गाय बन जाते थे, पाण्डवों में से किसी की भी रक्षा की उसे जरूरत न थी। हिन्दुस्तान के स्त्रीत्व के विकास का आज हम निरोध करके हिन्दुस्तान के पुरुषत्व के विकास को रोक रहे हैं। इसको किसी और प्रभुत्व के प्रति हम जो कमाई करते हैं, वहाँ

हजार गुना बढ़कर हमारे आगे आती है। हमारी निर्बलता, अनिश्चयता, संकीर्णता और बेवगी का यह एक कारण है। इसलिए हम एक बार महान प्रयत्न करके इस पर्दे को फाड़ फेकें।

पर्दे की कुप्रथा

बिहार के बहुत से प्रभावशाली पुरुषों, और लगभग उतनी ही स्त्रियों द्वारा हस्ताक्षर की गयी एक अपील पर्दे को बिलकुल समाप्त कर देने के लिए अभी अभी निकाली गयी है। पचास से अधिक स्त्रियों ने उसपर हस्ताक्षर किये हैं। यही प्रकट करता है कि यदि जोरदार काम किया गया, तो बिहार से पर्दा भूतकाल की चीज हो जायगी। यह भी एक ध्यान देने योग्य बात है कि जिन स्त्रियों ने उस पर हस्ताक्षर किये हैं वे पश्चिमी रोशनी से प्रभावित नहीं हैं, बल्कि कट्टर हिन्दू! यह निश्चित रूप से तय करता है :—

"हम लोग चाहती हैं कि इस प्रान्त में स्त्रियाँ घूमने-फिरने और सामाजिक जाति के जीवन मे अपना उचित काम लेने के लिए उतनी ही स्वतन्त्र हों, जितनी कर्नाटक, महाराष्ट्र और मद्रास में भारतीय बहनें बिना योरोपियन रङ्ग में रंगे रहा करती हैं, क्योंकि हमारा विश्वास है कि आरोपित

बिहार का पर्दा

एक मित्र ने अपने पत्र में लिखा है कि पर्दे के विरोध में जो प्रदर्शन बिहार के बड़े-बड़े केन्द्रों में इसी माह की आठवीं तारीख को किया गया था, उसका आशातीत परिणाम हुआ। पटना की 'सर्चलाइट' की रिपोर्ट इस प्रकार है :—

"इसी ८ जुलाई रविवार को राधिका सिनहा इन्स्टीट्यूट में स्त्रियों और पुरुषों का बड़ा सुन्दर सम्मिलित दृश्य देखने में आया। घनघोर वर्षा होने पर भी जो सभा के ठीक समय पर बन्द हो गयी, भीड़ आशा से अधिक थी। उस बड़े हाल का आधा हिस्सा स्त्रियों से भरा था, जिनमें से ३ ऐसी थीं, जो एक दिन पहले नहीं, एक घण्टे पहले पर्दे में थीं।"

वहाँ निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया :—

"हम पटना के पुरुष और स्त्री, जो यहाँ एकत्र हैं, उस पर्दा की घातक कुप्रथा को बहिष्कृत कर चुके हैं, जिससे देश की विशेषकर स्त्रियों की अपरिमित हानि हुई है और हो रही है, अन्य प्रान्तों की स्त्रियों से जो सुविधे में हैं, हमारी अपील है कि वे शीघ्रातिशीघ्र इसे समाप्त कर दें, और इस तरह अपना स्वास्थ्य और विकास करें।"

पर्दे के विरुद्ध जोरदार प्रचार करने के लिए एक अस्थायी कमेटी बनाई गयी थी। स्त्री-शिक्षा-प्रचार के लिए भी एक कमेटी बनी थी। एक तीसरे प्रस्ताव द्वारा हर नगर और गाँव में महिला-समितियाँ बनाने

बिहार का पर्दा

एक मित्र ने अपने पत्र में लिखा है कि पर्दे के विरोध में जो प्र
र्शन बिहार के बड़े-बड़े केन्द्रों में इसी माह की आठवीं तारीख को कि
गया था, उसका आशातीत परिणाम हुआ। पटना की 'सर्चलाइट'
रिपोर्ट इस प्रकार है :—

"इसी ८ जुलाई रविवार को राधिका सिनहा इन्स्टीट्यूट में
और पुरुषों का बड़ा सुन्दर सम्मिलित दृश्य देखने में आया।
वर्षा होने पर भी जो सभा के ठीक समय पर बन्द हो गयी, भीड़
से अधिक थी। उस बड़े हाल का आधा हिस्सा स्त्रियों से
जिनमें से ¾ ऐसी थीं, जो एक दिन पहले नहीं, एक घण्टे
में थीं।"

वहाँ निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया :—

"हम पटना के पुरुष और स्त्री, जो यहाँ एकत्र हैं,
घातक कुप्रथा को बहिष्कृत कर चुके हैं, जिससे देश की
की अपरिमित हानि हुई है और हो रही है, अन्य प्रा
से जो मुविधे में हैं, हमारी अपील शीघ्रातिशीघ्र
दें, और इस तरह अपना करें।"

पर्दे के विरुद्ध लिए
बनाई

बर्मा की महिलाओं से

गांधीजी ने मौलमीन की एक सभा में बर्मा के लोगों को सुझाया कि वे यदि स्वावलम्बी तथा सुखी होना चाहें, तो चरखा चलायें और औरतों से उन्होंने कहा, इस समय तुम जिस प्रकार स्वतन्त्रता से रह रही हो, वैसी कहीं की भी स्त्रियां नहीं रह रही हैं। अपनी कुशलता और व्यवसाय के लिए तुम प्रसिद्ध हो। तुम्हारे भीतर संगठन की बड़ी शक्ति है और यदि तुम अपनी विदेशी बहुमूल्य वस्तुओं की रुचि में सुधार कर लो और सादगी को अपना लो, जैसा करने के लिए मैंने अभी कहा है, तो तुम्हारे जीवन में शान्ति हो जाय।

धूम्रपान के भयानक रोग के विषय में कहने का मुझमें साहस ही नहीं। परन्तु मैं समझता हूँ, बर्मा में मुझे कोई स्त्री या पुरुष इससे बचा न मिलेगा। हम लोग जो भारतवर्ष से आये हैं, सुन्दर बर्मा की सुन्दर स्त्रियों को चुरुट और सिगरेट से अपने मुँह खराब करते देखकर दुःखपूर्ण आश्चर्य करते हैं। किन्तु मैं जानता हूँ कि ऐसी बुराई के विषय में कुछ कहना ही कठिन है, जो सारी दुनिया में छाई हुई है। अगर तुमने टॉल्स्टाय का नाम सुना है, तो मैं उन्हीं का शब्द दुहराता हूँ, वो एक बड़े धूम्रपानी थे, और उन्होंने अनुभव किया कि तम्बाकू से लोगों का दिमाग भद्दा हो जाता है और दूसरी शक्तियां भी क्षीण हो जाती हैं। वस्तुतः उन्होंने उदाहरण के साथ सिद्ध किया है कि कुछ बड़े बड़े जुर्म धूम्रपान के

बर्मा की महिलाओं से

गांधीजी ने मौलमीन की एक सभा में बर्मा के लोगों को सुझाया कि वे यदि स्वावलम्बी तथा सुखी होना चाहें, तो चरखा चलायें और औरतों से उन्होंने कहा, इस समय तुम जिस प्रकार स्वतन्त्रता से रह रही हो, वैसी कहीं की भी स्त्रियां नहीं रह रही हैं। अपनी कुशलता और व्यवसाय के लिए तुम प्रसिद्ध हो। तुम्हारे भीतर संगठन की बड़ी शक्ति है और यदि तुम अपनी विदेशी बहुमूल्य वस्तुओं की रुचि में सुधार कर लो और सादगी को अपना लो, जैसा करने के लिए मैंने अभी कहा है, तो तुम्हारे जीवन में शान्ति हो जाय।

धूम्रपान के भयानक रोग के विषय में कहने का मुझमें साहस ही नहीं। परन्तु मैं समझता हूं, बर्मा में मुझे कोई स्त्री या पुरुष इससे बचा न मिलेगा। हम लोग जो भारतवर्ष से आते हैं, सुन्दर बर्मा की सुन्दर स्त्रियों को चुरुट और सिगरेट से अपने मुंह खराब करते देखकर दुःखपूर्ण आश्चर्य करते हैं। किन्तु मैं जानता हूं कि ऐसी बुराई के विषय में कुछ कहना ही कठिन है, जो सारी दुनिया में छाई हुई है। अगर तुमने टॉल्स्टाय का नाम सुना है, तो मैं उन्हीं का शब्द दुहराता हूं, जो एक धूम्रपानी थे, और उन्होंने अनुभव किया कि तम्बाकू से लोगों का विवेक नष्ट हो जाता है और दूसरी शक्तियां भी क्षीण हो जाती हैं। मजबूत उन्होंने उदाहरण के साथ सिद्ध किया है कि कुछ बड़े बड़े जुर्म धूम्रपान के

समाज में स्त्रियों की स्थिति

प्रश्न—भारतीय स्त्रियों की राजनैतिक तथा नागरिक जागृति के का
उनके अब तक के घरेलू कर्तव्यों के बीच संघर्ष उपस्थित हो गया है
अगर कोई स्त्री जनता की सेवा में व्यस्त रहे, तो सम्भव है कि
अपने बच्चों की ओर तथा घरेलू धन्धों की ओर ध्यान न दे सके।
गुत्थी कैसे सुलझाई जाय ?

उत्तर—अक्सर स्त्रियों का बहुत-सा समय आवश्यक घरेलू का
में नहीं, बल्कि अपने-अपने मालिक तथा अपने पति के अहम्पूर्ण
की तृप्ति करने में ही बीतता है। मेरे विचार से स्त्रियों की यह गुला
मारी असभ्यता का अवशेष है। यही समय है कि हमारा स्त्री-सम
स बन्धन से मुक्त हो जाय। स्त्री का सारा समय घरेलू कार्यों में न
लगना चाहिये।